संदर्भ

नवम्बर-दिसम्बर 1994, मूल्य 7/-

संपादन:
राजेश खिंदरी
रश्मि पालीवाल
सी.एन. सुब्रह्मण्यम
हृदयकांत दीवान

सहसंपादक:
माधव केलकर
दीपक वर्मा

चित्रांकन:
शिवेंद्र पांडिया

सहयोग:
टुलटुल विश्वास
जया विवेक

मुखपृष्ठ:
मूल चित्र: चिहिरो इवासाकी

मुखपृष्ठ पर संदर्भ:
अनीता वैद्य

संदर्भ

शिक्षा की द्वैमासिक पत्रिका
अंक-2, नवम्बर-दिसम्बर 1994

संपादन एवं वितरण:
एकलव्य
कोठी बाज़ार
होशंगाबाद- 461 001 (म.प्र.)
फोन: 07574 - 2518

वार्षिक सदस्यता (6अंक): 35 रुपये

मानव संसाधन विकास मंत्रालय की एक परियोजना के तहत प्रकाशित

संदर्भ में छपे मतों से मानव संसाधन विकास मंत्रालय का सहमत होना आवश्यक नहीं है

संपादकीय

दूसरा अंक है यह संदर्भ का। जैसा कि पिछली बार ज़िक्र किया था, संदर्भ के ज़रिए यह प्रयास किया जा रहा है कि ऐसी सामग्री 'एकलव्य' के कार्यक्रमों के साथ जुड़ी हुई शालाओं तक ही सीमित न रहकर, औरों तक भी पहुंच सके - अन्य शालाओं, शिक्षकों, संस्थाओं तक भी। इस कोशिश के तहत मध्य-प्रदेश के उज्जैन, इंदौर, भोपाल और होशंगाबाद संभागों के सभी हाईस्कूलों और उच्चतर माध्यमिक शालाओं को संदर्भ के पहले तीन अंक भेजे जा रहे हैं। अर्थात इन 6 महीनों के दौरान उन तक संदर्भ की तीन प्रतियां पहुंचेंगी

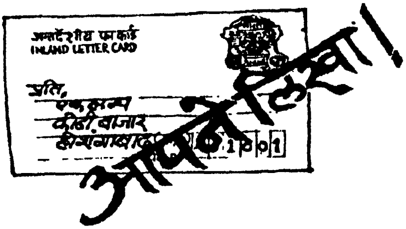

प्रिय संपादक,

'संदर्भ' का पहला अंक पढ़ा, मुझे बहुत अच्छा लगा। मैं आपके दो अन्य प्रकाशनों 'चकमक' और 'स्रोत' का पहले से पाठक हूं। कृपया इस पत्रिका में चकमक की तरह कहानियां अधिक न दें, स्रोत की तरह वैज्ञानिक सामग्री अधिक दें। जैसे कम्प्यूटर के बारे में बताया वैसे ही अन्य यंत्रों के बारे में भी बताएं।

आशुतोष रघुवंशी,
सिवनी मालवा,
ज़िला होशंगाबाद, म.प्र.

प्रिय संपादक,

तीन महीनों के लिए देश से बाहर था। वापस आया तो 'संदर्भ' की प्रति मिली। यह कोशिश तसल्लीबख्श है। उम्मीद है इससे शिक्षकों एवं शिक्षाकर्मियों के साथ अच्छा संवाद बनेगा।

राणाप्रताप
रोहतक, हरियाणा

प्रिय संपादक,

'संदर्भ' का पहला अंक डाक से मिला। पत्रिका का आकार और सुंदर छपाई अच्छी लगी। मुझे इस प्रकार की सामग्री की बहुत आवश्यकता लग रही थी। बस 'चकमक' से काम चला रहा था। यहां तो उस प्रकार का कोई साहित्य उपलब्ध नहीं हो पाता। विस्तार से पढ़ने के बाद और पत्र लिखूंगा।

गोविंद उघले
शुजालपुर, म. प्र.

'संदर्भ' के पहले अंक को लोगों ने सराहा, ऐसी चिट्ठियां हमें मिलीं। उन खतों की कमी बहुत अखरी जिनमें संदर्भ के आकार, सामग्री आदि की आलोचनात्मक समीक्षा की गई हो। समीक्षात्मक पत्रों से हमें पत्रिका में गुणात्मक सुधार लाने में मदद मिलेगी। ऐसे पत्रों की प्रतीक्षा में,

संपादन मंडल

प्रिय संपादक,

'संदर्भ' का पहला अंक मुझे बहुत पसंद आया। गंगा गुप्ता का लेख 'मुझे डर लगता है गणित से' बहुत अच्छा लगा। मैं चाहूंगा कि यह लेख गुजराती-भाषी पाठकों तक भी पहुंचे। हम सन् 1963 से गुजराती में अंक-गणित विषय की एक पत्रिका 'सुगणितम' प्रकाशित कर रहे हैं। हम उपरोक्त लेख का अनुवाद गुजराती में अपनी पत्रिका में प्रकाशित करना चाहते हैं। उम्मीद है आपकी अनुमति मिलेगी।

ए.एम. वैद्य, प्रोफेसर
गुजरात विश्वविद्यालय, अहमदाबाद

प्रिय संपादक,

'संदर्भ' माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के लिए काफी आकर्षक व रुचिपूर्ण बन सकती है। विशेष तौर से 'नक्शे का सस्ता स्टेंसिल' व 'इतिहास की खोज - करके देखो' लेख अच्छे लगे। आंकड़े बताता लेख चौंकाता नहीं, चिंतित करता है। कमोबेश यही स्थिति उत्तर-प्रदेश की है। शिक्षा या शिक्षा संस्थानों के प्रति सामान्यतः बच्चों के मन में पैदा हुई अरुचि को दूर करने के लिए किए जा रहे प्रयासों का एक उदाहरण पुस्तक में प्रकाशित लेख 'आया समझ में' प्रस्तुत करता है।

अनुराधा पाण्डे
चम्पानौला, अल्मोड़ा, उ. प्र.

प्रिय संपादक,

संदर्भ का सितम्बर-अक्टूबर अंक मिला। मै स्वयं शिक्षक हूं इसलिए कह सकता हूं कि यह पत्रिका शिक्षक समुदाय के लिए अत्यंत उपयोगी है। यह कुछ नया सोचने, करने का स्फुरण जागृत करती है हमारे भीतर। इसलिए यह आशा जागती है कि इससे शिक्षा-क्षेत्र में आया ठहराव अथवा गतिमंदता किन्हीं-न-किन्हीं अंशों में अवश्य दूर होगी। हमारे राष्ट्रीय जीवन का एक दुखद पक्ष यह है कि हम दिन-ब-दिन गज़ब के सुविधा-प्रेमी हो रहे हैं। हम चाहते हैं कि हमें कुछ न करना पड़े या बहुत कम करना पड़े और हम बड़े ठाठ-बाट से जिएं। हमारा शिक्षक वर्ग भी इस जीवन शैली का शिकार हो रहा है। मुझे लगता है कि 'संदर्भ' को इस दिशा में कुछ कारगर प्रयास करना चाहिए, ताकि शिक्षा-क्षेत्र की तंद्रा टूटे। मुझे प्रसन्नता होगी यदि यह पत्रिका इस दृष्टि से कोई वैचारिक मंच तैयार करने की पहल कर सके। मैं समझता हूं कि ऐसे किसी अभियान से अनेक निष्ठावान शिक्षक आपके साथ सहयोगार्थ खड़े हो सकते हैं। कुछ उत्साही और सक्रिय शिक्षकों की सहायता से समूचे देश के शिक्षकों में कर्तव्यबोध जागृत किया जा सकता है। मेरा निवेदन है कि इस संबंध में थोड़ा विचार करें।

जगदीश तोमर
जीवाजीगंज, ग्वालियर, म.प्र.

प्रिय संपादक,

'संदर्भ' का पहला अंक दिल्ली के भारतीयम् मैदान, जहां बच्चों, शिक्षकों व अन्य कार्यकर्ताओं का समूह मज़े लेने में मशगूल था, प्राप्त किया।

जॉन हॉल्ट के अनुभव आज के संदर्भ में कितने सार्थक सिद्ध होते हैं। कहने का मतलब है कि इस तरह के अनुभवों को आत्मसात करके यदि आज कोई शिक्षक प्रयास कर रहा है तो उसे क्या नए परिणाम मिले, यह भी आप उदाहरण सहित देंगे तो अच्छा होगा।

इतिहास की खोज को जिस प्रकार समझाया गया है वह सही लगा। हमारे स्कूलों में इतिहास पढ़ाने के तरीकों को और रुचिकर बनाने में इस तरह की गतिविधियां मददगार साबित होंगी। सत्यजीत-रे की कहानी 'शिवु और राक्षस' में शिवु के माध्यम से बच्चे की कल्पनाशीलता को बहुत अच्छे ढंग से दिखाया गया है पर मछली के पेट में उस राक्षस के प्राण जैसी बात से एक गलत धारणा को और परिपक्वता भी मिलने का खतरा है।

गीता (विज्ञान शिक्षिका)
रा. कन्या [illegible]. वि., आसन
ज़िला रोहतक, हरियाणा

हज़ारों साल पहले बर्फीले इलाकों में बड़े बाल वाले हाथी घूमा करते थे। अब ये विलुप्त हो चुके हैं। इन्हें मैमथ कहा जाता है। मैमथ का 44 हज़ार साल पुराना यह ढांचा मिला बर्फीले साइबेरिया में - बर्फ ने संरक्षक का काम किया और मैमथ के ढांचे को सुरक्षित रखा, मांसपेशियों और आंतरिक अंगों सहित।

●●●

इतिहास - ऐसे भी मिलते हैं सुराग

इतिहास समझने के लिए सूत्रों से मिली जानकारी की तुलना ज़रूरी है। टॉलुण्ड आदमी के शव के ऐसे ही अध्ययन से दो हज़ार साल पहले के जर्मन कबीलों की प्रथाओं के बारे में नए सबूत मिले।

टॉलुण्ड आदमी : 1950 में डेनमार्क के टॉलुण्ड इलाके में हुई खुदाई के दौरान मिला दो हज़ार साल पुराना शव, इसके गले में रस्सी का फंदा पड़ा है।

इतिहास जानने और समझने के लिए वैसे तो हमें कई कुशलताओं में निपुण होना पड़ेगा, पर शुरुआत के लिए कुछ बिलकुल बुनियादी बातों का अभ्यास कर लेते हैं। इनमें से एक बिलकुल सीधी सादी बात यह है कि इतिहास में किसी भी चीज़ की जानकारी अलग-अलग सूत्रों से मिलती है। किसी एक सूत्र से मिली जानकारी कभी पूरी बात नहीं बता सकती। इतिहास की खोज

का एक बुनियादी नियम है कि अलग-अलग सूत्रों से जानकारी हासिल करो, फिर एक सूत्र से मिली जानकारी की दूसरे सूत्रों से मिली जानकारी से तुलना कर के देखो।

मसलन मौर्य साम्राज्य में यात्रा कर रहे मेगस्थनीज़ ने अपनी पुस्तक इण्डिका में सड़कों पर लगाए गए मील के पत्थरों का ज़िक्र किया है। पर मौर्यकाल से संबंधित जितना भी उत्खनन का काम हुआ है उसमें अभी तक ऐसे पत्थरों का शायद ही कोई अवशेष मिला है। जब तक मौर्यकालीन मील के पत्थरों के ठोस अवशेष नहीं मिलते मेगस्थनीज़ की पुस्तक से प्राप्त जानकारी की विश्वसनीयता मज़बूत नहीं बनेगी।

अलग-अलग सूत्रों से जानकारी लेकर सच्चाई जानने की एक कोशिश चलिए हम भी करके देखें। आज़माइश के लिए लीजिए टॉलुण्ड के आदमी का मशहूर किस्सा। प्राचीन इतिहास और पुरातत्व की दुनिया में इस किस्से ने सबको दंग कर दिया क्योंकि प्राचीन लोगों के बर्तन भांडे तो बहुत मिलते हैं, हड्डियां और मकान भी, और उनके बारे में लिखी गई बातें भी पता चल जाती हैं - लेकिन हाड़-मांस, वस्त्र और भोजन समेत साक्षात मनुष्य से तो सामना कभी नहीं होता था।

टॉलुण्ड मनुष्य

8 मई, 1950 — बात डेनमार्क देश में स्थित एक जगह टॉलुण्ड-फेन की है। शाम के घिरते अन्धेरे में चिड़ियों की तीखी चहचहाहट सुनाई दे रही थी। यह वो इलाका था जहां पीट मिट्टी पाई जाती है। दलदली जगहों की इस मिट्टी में बहुत अधिक मात्रा में जैविक पदार्थ मिले होते हैं— यानी पेड़-पौधों के अवशेष। इस तरह की जैविक सामग्री सूखने पर काफी ज्वलन- शील होती है। इसलिए लोग पीट मिट्टी के बड़े-बड़े टुकड़े काट कर घर ले जाते हैं और सुखाकर उसे चूल्हे जलाने के काम में लेते हैं।

तो 8 मई, 1950 की उस शाम दो आदमी अपनी रसोई के लिए पीट मिट्टी काटने में लगे थे कि उन्हें मिट्टी की तहों में एक मनुष्य का चेहरा दिखाई दिया। ऐसा ताज़ा-सा दिखने वाला चेहरा मानो कुछ समय पूर्व ही

उसकी मृत्यु हुई हो। क्या यह कोई हाल में घटी हत्या का मामला था? दोनों ने तुरन्त सेल्कबर्ग पुलिस थाने में खबर की। पुलिस वहां पहुंची और मनुष्य के शरीर से मिट्टी की सारी परतों को धीरे-धीरे हटाया। वह अपनी दाहिनी करवट पर सोया-सा लग रहा था। वह आदमी जहां मिला वह जगह ठोस ज़मीन से लगभग 50 मीटर अलग हट के थी (यानी दलदली इलाके में) और उस आदमी के ऊपर दो मीटर गहरी पीट की परत थी।

उसने सिर पर चमड़े की एक नुकीली टोपी पहनी हुई थी जो एक चमड़े की रस्सी से उसकी ठुड्डी के नीचे अच्छे से बंधी हुई थी। उसकी कमर पर भी चमड़े की एक चिकनी पेटी बंधी हुई थी। बस उसके शरीर पर और कोई वस्त्र नहीं था। उसके बाल इतने छोटे कटे हुए थे कि टोपी के नीचे से थोड़े से ही दिखते थे। उसकी दाढ़ी तो नहीं थी बस गालों और ओठों के ऊपर महीन-सी बढ़त थी।

यूं तो यह आदमी बड़े कोमल, शान्त भाव से सोया जान पड़ रहा था। पर जैसे ही उसके सिर के पास से पीट का एक छोटा टुकड़ा हटाया गया तो एक धक्का-सा लगा। एक रस्सी दिखी - चमड़े के दो फीतों से गुंथी हुई। फांसी के फन्दे की रस्सी। उसकी गर्दन पर कसी हुई यह रस्सी कन्धे के ऊपर से जाती हुई पीठ पर पड़ी थी।

कौन था यह आदमी? मिट्टी में दबे हुए उसे कितना समय हो गया था? उसकी मृत्यु क्यों हुई?

लाश को दलदल में से निकालने के बाद वैज्ञानिकों और डॉक्टरों को जांच के लिए दे दिया गया। उनके निष्कर्ष इस प्रकार थे:

1. दफनाने की तिथि:

लाश के नीचे मिट्टी पर काई की एक पतली परत थी। वैज्ञानिकों ने पता किया कि डेनमार्क के पीट के

पीट मिट्टी

इसका निर्माण खास तौर से उन इलाकों में होता है जहां किसी भी कारण से जैविक पदार्थों के सड़ने की प्रक्रिया अत्यन्त धीमी होती है। कम तापमान के इलाके (यूरोप, एशिया, अमेरिका के उत्तरी भाग) और बहुत अधिक जल वाले इलाके (दलदल व झील चाहे वे गर्म प्रदेशों की ही क्यों न हों) ऐसे हैं, जहां जैविक पदार्थ बहुत ही धीरे-धीरे सड़ते हैं। कम गले हुए पेड़-पौधों के अवशेष जहां बड़ी मात्रा में इकट्ठे होते जाते हैं, वहां जब 12 इंच या उससे अधिक मोटी ऐसी मिट्टी की तह बन जाती है जिसमें 30% से अधिक मात्रा जैविक सामग्री की है, तो उसे 'पीट' मिट्टी कहा जाता है। पीट की जांच करने पर उन पेड़-पौधों, वनस्पतियों के रेशे पहचान में आ जाते हैं जिनसे यह मिट्टी बनी थी।

ठंडे या जलीय वातावरण में बैक्टीरिया या फफूंद की सक्रियता कम होती है इसलिए चीज़ें जल्दी सड़ नहीं पातीं। जहां पानी में वनस्पति डुबी रहती है वहां ऑक्सीजन की कमी के कारण जीवाणुओं की सक्रियता कम रहती है। इसलिए भी वहां वनस्पति जल्दी सड़ नहीं पाती। अधसड़े इकट्ठे होते हुए वनस्पति भंडार में बड़ी मात्रा में अम्ल पैदा होता है।

पीट की जानकारी हमारे लिए इसलिए भी रोचक है क्योंकि इसका संबंध कोयले से भी है। ऊपर जब मिट्टी, पत्थर की तहें बहुत बढ़ जाएं और पीट पर काफी ज़्यादा दबाव पड़ता रहे तो धीरे-धीरे उसका पानी निकल जाता है व दब-दब के पीट, कोयले में परिवर्तित होने लगता है। एक अनुमान लगाया गया है कि पांच से.मी. मोटे पीट से एक से.मी. मोटी कोयले की तह बनती है।

दलदलों में लौह युग की शुरुआत में ऐसी काई की परत निर्मित हुई थी। यानी लगभग ईसा के जन्म के युग में। इस तरह, लौह युगीन मिट्टी की परत में गड्ढा बना के दफनाया गया यह आदमी आज से लगभग 2000 वर्ष पहले का माना जाएगा।

पीट में अम्ल की मात्रा बहुत अधिक होती है। इस अम्ल ने लाश को सड़ने नहीं दिया और उसे देखकर

लग रहा था जैसे वह कुछ समय पहले ही मरा हो।

2. मृत्यु की वजह:

एक्सरे व मेडिकल जांच ने यह बताया कि आदमी का सिर, हृदय, फेफड़े, आमाशय सब दुरुस्त थे। आदमी बूढ़ा भी नहीं था - परन्तु उसकी उम्र 20 वर्ष से ज़्यादा ही रही होगी क्योंकि उसकी अकल की दाढ़ निकल आई थी। हो न हो उसकी मौत गले में पड़े फन्दे से ही हुई थी। इस रस्सी के निशान उसकी ठुड्डी के नीचे और गले के किनारों पर साफ दिख रहे थे जबकि गले के पीछे जहां रस्सी की गांठ थी निशान नहीं था। यह कहना मुश्किल था कि उसकी गर्दन तोड़ी गई थी या नहीं क्योंकि हड्डियां बहुत भुरभुरी हो चुकी थीं।

3. उसका आखिरी भोजन

आदमी के पेट व आंतों की पूरी जांच हुई। इससे यह पता चला कि उस आदमी ने अपने आखिरी भोजन में सब्ज़ियों, बीजों (जिनमें कुछ जंगली थे और कुछ खेतों में उगाए जाने वाले थे) का बना सूप-सा कुछ पिया था।

मांस खाने के कोई अवशेष पेट में नहीं थे और भोजन के पाचन की अवस्था देख कर यह पता चल रहा था कि वह आदमी खाना खाने के बाद 12-24 घंटे तक तो जीवित रहा ही था। यानी मृत्यु के पहले लगभग एक दिन वह भूखा रहा था। दो बातें गौर करने लायक थीं:

(क) आदमी ने जो सूप पिया था उसमें कई ऐसे बीज थे जो आमतौर पर आसानी से नहीं पाए जाते। ऐसा लगता है जैसे किसी विशेष अवसर के भोजन के लिए इन चीज़ों को खास तौर से इकट्ठा किया गया था।

(ख) ये सब बीज ऐसे थे जो उस इलाके में केवल बसंत ऋतु में पाए जाते हैं।

टॉलुण्ड की लाश का राज़ जानने में शायद हमें ऐसे कुछ अन्य तथ्यों से सुराग मिल जाएं जो लौह युगीन लोगों के जीवन पर प्रकाश डालते हैं। ये तथ्य उन लोगों से संबंधित हैं जो डेनमार्क और जर्मनी में उसी समय रहा करते थे, जिस समय टॉलुण्ड वाला आदमी जीता था। (यानी 50 ई.पू. से 100 ईसवी के युग में)।

सुराग 1

जर्मन कबीलों के कायदे

"जर्मन कबीले अपनी कबीलाई सभा के बीच आरोपी लोगों की सुनवाई करते हैं। जुर्म के अनुसार

दण्ड दिया जाता है। गद्दारों को पेड़ से लटकाया जाता है। डरपोक लोगों को या जो लड़ाई में फिसड्डी रहते हों या 'बुरे' माने जाते हों, उन्हें ऊपर से डन्डियों से दबाकर दलदलों में डुबो दिया जाता है।" (यह अंश कॉर्नेलियस टैसिटस नाम के एक रोमन आदमी द्वारा जर्मन कबीलों पर लिखी गई एक किताब से लिया गया है। यह किताब 97-98 ईसवी में लिखी गई थी)।

सुराग 2

कबीलों की धार्मिक मान्यताएं

टैसिटस की किताब से ही हमें उत्तर जर्मनी के सात कबीलों की

धार्मिक मान्यताओं का भी पता चलता है। ये कबीले 'धरतीमाता' को पूजते थे जो बसन्त की देवी थी, उगती हुई फसलों की देवी थी। हर बसन्त में वे नई फसल और नए जीवन के जन्म का त्यौहार मनाते थे।

"इन कबीलों में बस एक ही बड़ी खास बात है वे बसन्त की देवी, धरती माता की पूजा करते हैं। कि वे मानते हैं कि हर बसन्त में देवी माता कबीले के बीच आकर सवारी करती हुई चली जाती है। वे मानते हैं कि एक झील के बीचों-बीच जंगलों से ढका एक छोटा-सा टापू है, जिसमें एक दिव्य रथ कपड़े से ढका रहता है। उसे सिर्फ एक विशेष पुजारी ही छू सकता है। जब देवी मां गायों द्वारा खींचे गए अपने रथ पर सवारी करती हुई जाती है तो वह पुजारी उसके पीछे-पीछे जाता है।

"जहां-जहां देवी मां की सवारी जाती है वहां कई दिनों तक हर्षोल्लास के साथ त्यौहार मनाया जाता है। पर अन्त में देवी साधारण मनुष्यों के बीच रहते हुए थक जाती है और अपने दिव्य जंगल में रहने के लिए लौट जाती है। तब देवी की मूर्ति, रथ व कपड़ों को एक गुप्त झील में धो कर साफ किया जाता है। यह काम करते हैं कबीले के दास जिन्हें बाद में झील में डुबोकर मार दिया जाता है।"

सुराग 3

इस चित्र में दिख रहा फन्दा लौह युग के एक अन्य आदमी के गले पर

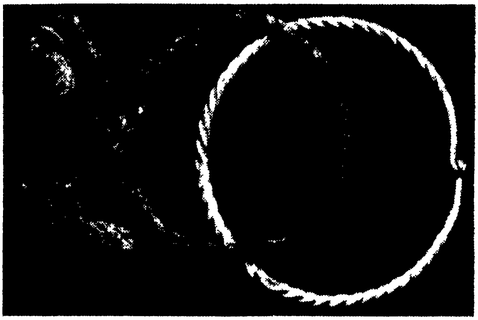

मिला था जो डेनमार्क में ही एक अन्य स्थान बोरफेन में दबा हुआ पाया गया था। इस आदमी का भी आखिरी भोजन बसन्त के बीजों से बना हुआ सूप था। उसके शरीर पर बर्च पेड़ की एक मीटर लंबी व साढ़े चार से.मी. मोटी डाली पड़ी थी। फन्दे के पास गले में पहना जाने वाला एक कड़ा दिख रहा था। लौह युग के लोग ऐसे कड़ों को दलदलों में दबाकर बसन्त देवी को चढ़ाते थे।

सुराग 4.

ग्रॉबाल आदमी

यह एक और आदमी का चित्र है जो डेनमार्क में 'ग्रॉबाल' नामक स्थान पर दबा मिला। उसका गला एक कान से दूसरे कान तक कटा हुआ था। वैज्ञानिकों ने पता किया कि वह 1650 साल पहले दबाया गया था। मरने से थोड़ा समय पहले उसने जो आखिरी भोजन लिया, उसमें भी टॉलुण्ड के आखिरी भोजन जैसे ही बसन्त के बीजों और सब्ज़ियों से बना सूप था।

टॉलुण्ड की लाश का राज़ - एक जांच पड़ताल

टॉलुण्ड आदमी की कहानी में आपको इतिहास की जानकारी देने वाले अलग-अलग सूत्रों की तुलना किए जाने का उदाहरण तो स्पष्ट दिखा होगा। पर इसी कहानी में इतिहास की कक्षा में गतिविधि करवा पाने की संभावना भी छिपी हुई है। इसके लिए आप इस कहानी को छात्रों को सुनाकर या पढ़ाकर और नीचे दिए गए प्रश्न पूछ कर पहला प्रयास कर सकते हैं। पहले दिए गए चार सुरागों पर खास ध्यान देते हुए छात्र इन प्रश्नों के जवाब दें। उनके जवाबों से यह ज़ाहिर होगा कि जानकारी के हर सूत्र की और कई सूत्रों के आपसी संबंध और एक-दूसरे पर निर्भरता की कितनी समझ आप उन में बना पाए हैं। फिर इन मुद्दों पर आप उन के साथ एक सार्थक चर्चा कर सकते हैं। अपनी चर्चा का पूरा ब्यौरा हमें ज़रूर भेजिएगा।

1. लाश किसे मिली थी?
2. लाश कहां मिली थी?
3. लाश पर या उसके पास क्या-क्या वस्त्र या अन्य चीज़ें पाई गई थीं?
4. आदमी की उम्र क्या थी?
5. उसे मरे हुए कितना समय बीत चुका था?
6. कौन-सी बात उसकी मौत के लिए सबसे अधिक ज़िम्मेदार हो सकती है? बुढ़ापा, बीमारी, आत्महत्या? कारण सहित अपना उत्तर समझाओ।
7. उसकी मृत्यु इस प्रकार क्यों हुई? आपके अनुमान/निष्कर्ष का आधार क्या है?
8. आपकी कोई अन्य टिप्पणी?
9. क्या किसी पक्के निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए आपको कुछ और जानकारी की ज़रूरत महसूस हो रही है? किस प्रकार की जानकारी?
10. चर्चा के लिए - नरबलि के उदाहरण बहुत से समाजों में मिलते हैं। भारत के संदर्भ में नरबलि के क्या उदाहरण हैं?

(स्कूल हिस्ट्री काऊंसिल प्रोजेक्ट के एक पर्चे पर आधारित)

अपनी जांच पड़ताल का नतीजा और पूरा ब्यौरा इस पते पर लिख भेजिए

संदर्भ, एकलव्य, कोठी बाज़ार, होशंगाबाद (म.प्र.)

अंधकार से आती है बहार

● सुशील जोशी

फूल कब खिलें कब नहीं, कुछ पौधों में यह बात अंधकार की अवधि से तय होती है। जबकि कुछेक में अंधकार के साथ-साथ मौसम का तापमान भी इस प्रक्रिया पर असर डालता है।

पिछले अंक में आपने पढ़ा कि किसी भी पौधे में फूल तब तक लगना शुरू नहीं होते जब तक कि पौधा वयस्क अवस्था में न पहुंच जाए। वयस्कता प्राप्त करने का समय सब पौधों के लिए बहुत ही अलग-अलग हो सकता है। धान, गेहूँ जैसे पौधों में कुछ ही महीने तो आम जैसे पेड़ों में सालों-साल लग जाते हैं, पौधे को वयस्क अवस्था में पहुंचने में। हमने यह भी देखा कि विभिन्न प्रयोगों से समझ में आया है कि शायद फूल लगने की यह प्रक्रिया टहनियों के सिरे (शीर्ष) से नियंत्रित होती है। पर कैसे नियंत्रित होती है, कौन-कौन से कारक असर डालते हैं उस पर, इन मसलों-सवालों पर अभी भी खोजबीन जारी है।

पहली बार फूल तो खिल गए– पर उसके बाद हर साल उसी मौसम में फिर से पौधा बौराने लगता है। इस शताब्दी की शुरुआत में हुए प्रयोगों से ऐसा संकेत मिला था कि पौधों को शायद रोशनी की अवधि से पता चलता है। पर कुछ सालों बाद समझ में आया कि रोशनी नहीं, अंधकार की अवधि से तय होती है यह प्रक्रिया। क्या अर्थ निकलता है उसका – वहीं से शुरू करते हैं इस बार।

सबसे पहले स्पष्टीकरण! आमतौर पर पुस्तकों में अभी भी 'बड़े दिन' व 'छोटे दिन' जैसे शब्दों का इस्तेमाल होता है। हालांकि समय बदल चुका है। हम यहां पर नए शब्दों का उपयोग

करेंगे, छोटी रात के पौधे तथा लंबी रात के पौधे।

लंबी रात के पौधे

यह समझने के लिए कि छोटी रात और लंबी रात के पौधे क्या होते हैं किसी एक पौधे के उदाहरण से शुरू करते हैं। अगर गोखरू (ज़ैन्थियम) के ऐसे पौधों को लें जो वयस्क अवस्था प्राप्त कर चुके हैं परन्तु इस समय उन पर फूल नहीं हैं। वयस्क पौधा यानी जिसपर कम से कम एक बार फूल खिल चुके हैं। ऐसे पौधों के साथ प्रयोग करने पर पता चलता है कि अगर अलग-अलग पौधों को अन्धकार की निश्चित अवधि दी जाए तो कुछ ऐसे अवलोकन आते हैं -

पौधा क्र.	अन्धकार का समय	फूल खिले या नहीं
1.	7 घंटे	नहीं
2.	7.5 घंटे	नहीं
3.	8 घंटे	नहीं
4.	8.5 घंटे	हाँ
5.	9 घंटे	हाँ
6.	9.5 घंटे	हाँ
7.	10 घंटे	हाँ

अर्थात् जब तक अंधकार की अवधि साढ़े आठ घंटे से कम रहती है। गोखरू के पौधे पर फूल नहीं खिलते। परन्तु जैसे ही उसे साढ़े आठ घंटे या उससे ज़्यादा का अन्धकार

मिलता है, उस पर फूल आने लगते हैं – फिर चाहे अंधकार की अवधि साढ़े आठ घंटे से कितनी भी ज़्यादा क्यों न हो। यानी साढ़े आठ घंटे ऐसी सीमा है जिससे ज़्यादा अवधि का अन्धकार मिलने पर गोखरू पर फूल खिलने लगते हैं। इसे **क्रांतिक अवधि** कहते हैं।

सबसे मज़ेदार बात यह है कि अंधकार के इन साढ़े आठ घंटों के दौरान अगर एक बार भी उस पौधे पर रोशनी पड़ जाए तो फिर उस पर

फूल नहीं खिलते। यानी अगर आठ घंटे बाद भी एक बार उसकी तरफ टॉर्च जला दें तो ये आठ घंटे बेकार चले जाएंगे। **अर्थात् कमाल कुल अंधकार का नहीं बल्कि लगातार अंधकार का है।** यानी गोखरू के पौधे को फूल लगने के लिए कम-से-कम साढ़े आठ घंटे का लगातार अंधकार चाहिए। ऐसे पौधों को लम्बी रात के पौधे कहते हैं। मतलब कि उन्हें एक अवधि से ज़्यादा लम्बी रात चाहिए।

छोटी रात के पौधे

अब एक और पौधे खुरसानी अजवाइन (ह्योस्केपस) के साथ ऐसा ही प्रयोग करके देखते हैं:

पौधा क्र.	अन्धकार का समय	फूल खिले या नहीं
1.	15 घंटे	नहीं
2.	14 घंटे	नहीं
3.	13.5 घंटे	नहीं
4.	13 घंटे	हां
5.	12 घंटे	हां
6.	10 घंटे	हां
7.	8 घंटे	हां

अब देखिए, खुरसानी अजवाइन के पौधों पर फूल तभी लगते हैं जब उन्हें 13 घंटे से कम अवधि के लिए अंधकार मिले, चाहे वह सिर्फ पांच घंटे के लिए ही क्यों न हो। ऐसे पौधों को छोटी रात के पौधे कहा जाता है – यानी ऐसे पौधे जिन्हें फूल खिलने के लिए किसी खास अवधि (क्रांतिक अवधि) से कम समय के लिए लगातार अंधकार की ज़रूरत होती है। **आपने शायद इस बात पर गौर किया होगा कि लम्बी रात के पौधे साढ़े आठ घंटे के भी हो सकते हैं और छोटी रात के 13 घंटे वाले भी। यानी सिर्फ क्रांतिक अवधि से पता नहीं चलता कि पौधा लम्बी रात का है या छोटी रात का।**

एक बात और गौरतलब है कि कुछ किस्म के पौधों में तो सिर्फ एक बार सही मात्रा में अंधकार मिलने से ही फूल खिलने की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। पर बहुत से पौधे ऐसे भी होते हैं जिन्हें अगर कई दिनों तक सही मात्रा में अंधकार नहीं मिले तो उनमें यह प्रक्रिया ट्रिगर (प्रेरित) नहीं होती।

पत्तियों से मिलता है संकेत

यहां तक पहुंचने पर स्वाभाविक रूप से अगला सवाल उठता है कि अंधकार की इस अवधि का प्रभाव पौधे

कैसे पता चलता है महत्व अंधकार का

बड़ा दिन-छोटा दिन या छोटी रात-बड़ी रात कहने-सुनने में लगता है कि यह तो एक ही बात हुई। पर ऐसा है नहीं। गोखरू के पौधों के साथ हुए प्रयोगों के अवलोकन देखने से शायद कुछ समझ में आए।

सबसे पहले अंधकार की अवधि निश्चित रखते हैं और रोशनी की अवधि बदलकर देखते हैं कि फूल कब खिलने लगते हैं :

अंधकार	रोशनी	फूल खिले या नहीं
12 घंटे	7 घंटे	नहीं
12 घंटे	8 घंटे	नहीं
12 घंटे	9 घंटे	नहीं
12 घंटे	10 घंटे	नहीं
12 घंटे	11 घंटे	नहीं
12 घंटे	12 घंटे	नहीं

अब रोशनी की अवधि निश्चित कर देते हैं और अंधकार की अवधि बदलकर देखते हैं।

रोशनी	अंधकार	फूल खिले या नहीं
12 घंटे	7 घंटे	नहीं
12 घंटे	8 घंटे	नहीं
12 घंटे	9 घंटे	हाँ
12 घंटे	10 घंटे	हाँ
12 घंटे	11 घंटे	हाँ
12 घंटे	12 घंटे	हाँ

अब ख्याल आया कि ऐसा क्यों कहा जा रहा है कि फूल खिलने के लिए लगातार अंधकार का महत्व है, रोशनी का नहीं?

के किस हिस्से पर पड़ता है?

वैज्ञानिकों ने यह पता लगाया है कि फूल चाहे शीर्ष पर खिलता हो, मगर उसे संकेत देने वाली प्रक्रिया पत्तियों में होती है। यदि किसी पौधे के शीर्ष को रात की सही परिस्थिति प्रदान की जाए किन्तु पत्तियों को न दी जाए तो फूल नहीं आते। इसके विपरीत यदि पत्तियों को सही परिस्थिति में रखकर शीर्ष पर कुछ भी

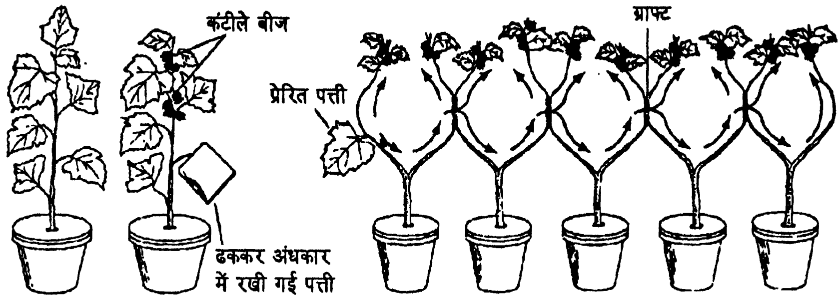

:) फूल नहीं खिले (ख) फूल खिले (ग) सब पौधों पर फूल खिले

धतूरे के पौधे के साथ हुए प्रयोगः (क) लगातार प्रकाश में रखा धतूरे का पौधा (ख) एक पत्ती को अंधकार में रखने पर (ग) उस प्रेरित पत्ती को अप्रेरित पौधे पर ग्राफ्ट करने तथा चार और पौधों को ग्राफ्टिंग से एक दूसरे से जोड़ने पर।

होने दिया जाए, तो भी फूल आ जाते हैं। यदि एक पौधे को लगातार प्रकाश में रखा जाए लेकिन उसकी एक ही पत्ती को बदलते अंधकार चक्र को महसूस करने दें तो भी पौधे पर फूल आ जाते हैं। इसका मतलब प्रकाश व अन्धकार के समय का अहसास पौधे के पत्तों को होता है।

ऐसा लगता है कि फूल खिलने की यह प्रक्रिया किसी हॉर्मोन के ज़रिए होती है। और यह भी पता चला है कि यह हॉर्मोन एक पौधे से दूसरे में पहुँचाए जाने पर भी उतना ही कारगर होता है। यदि एक प्रेरित पौधे (जिस पर फूल खिलने लगे हों) की पत्तियों को किसी अप्रेरित पौधे (जिसमें अभी फूल खिलना शुरू नहीं हुए) पर रोप दिया जाए तो अप्रेरित पौधे पर भी फूल आ जाते हैं। हालांकि इस हॉर्मोन को अब तक अलग नहीं किया जा सका है, फिर भी यह तय है कि ऐसा कुछ पदार्थ पत्तियों में बनता ज़रूर है। इसी बात को दिखाने के लिए एक प्रयोग इस प्रकार किया गया। एक लम्बी रात वाले पौधे को इतना समय अंधकार में रखा कि उसमें फूल बनने लगे। फिर इस पौधे को उसी किस्म के एक ऐसे पौधे के साथ जोड़ा गया जिसपर फूल नहीं थे। जोड़ने पर दूसरे पौधे में भी फूल आने लगे।

मतलब साफ है कि पत्तियों को सही मात्रा में अन्धकार की अवधि मिलने पर कोई रसायन (हॉर्मोन) बनता है, जो फिर उस पौधे के शीर्ष भागों (सिरों) को फूल बनाने का संकेत देता है।

ऐसे प्रयोगों से एक और आश्चर्यजनक बात समझ में आई है कि लम्बी-रात और छोटी-रात, दोनों

तरह के पौधों में एक ही तरह का रसायन (हॉर्मोन) बनता है। एक तरह के पौधों की प्रेरित पत्ती दूसरी तरह के अप्रेरित पौधों पर भी फूल खिला देती है।

इस हॉर्मोन को नाम भी दे दिया गया है – फ्लोरिजेन - फूल पैदा करने वाला। परन्तु बहुत खोजबीन के बावजूद वैज्ञानिक अब तक इसे अलग करने में सफल नहीं हो पाए हैं। आज भी शोध जारी है और दुनिया भर के वैज्ञानिकों में उसे अलग करने की होड़ लगी हुई है ।

क्यों होता है यह सब?

इतना सब जानने के बाद सवाल उठ सकता है कि इस तरह से एक साथ फूलने से पौधों को फायदा क्या होता है । एक ही किस्म के सारे पौधों पर एक साथ फूल लगने से परागण और निषेचन की संभावना तथा व्यापकता बढ़ जाती है। दूसरा, पौधों के फूलने का एक निश्चित समय होने से यह भी फायदा होता है कि उनका प्रजनन काल वातावरण की अनुकूल परिस्थितियों में आ जाता है। जैसे उष्ण-कटिबंध के छोटी रातों वाले पेड़ों को लें। इनमें फूल तब तक नहीं आएंगे जब तक कि रातें एक हद से छोटी न हो जाएं। यह परिस्थिति प्रायः गर्मियों में आएगी। यानी, ये पेड़ गर्मियों में फूलेंगे - देर गर्मियों में फलेंगे और बीज बनकर बिखरने तक बारिश का मौसम आ जाएगा, जो अंकुरण व वृद्धि के लिए अनुकूल होगा।

ठंड भी है एक कारक

अंधेरे-उजाले के फूलों के खिलने पर असर के बारे में इतना सारा पढ़कर कहीं ऐसा न लगने लगे कि यही एक कारक है। और भी बहुत से हैं, जिनमें से एक और महत्वपूर्ण कारक की यहां पर बात करेंगे।

कई पौधों में चाहे अंधकार की सही अवधि मिल जाए परन्तु फिर भी फूल तब तक नहीं लगते जब तक कि पूरा पौधा बहुत कम तापमान के एक दौर में से न गुज़रे । जैसे कि कुछ पौधे शून्य डिग्री से कम का तापमान 10-12 दिनों तक पाने के बाद ही फूल देते हैं ।

यह भी एक तरह का अनुकूलन ही है – ठंडे प्रदेशों के लिए। अगर कोई लम्बी रात वाला पौधा वहां पर अक्टूबर, नवम्बर में फूल देने लगे तो उसमें दिसम्बर में कड़ाके की ठंड के समय बीज बनेंगे जबकि पर्याप्त मात्रा में पोषण मिलना बहुत मुश्किल होता है। ऐसे पौधों में फूल तब तक नहीं खिलते जब तक कि सर्वाधिक ठंड का कठिन दौर गुज़र न जाए। उसके बाद भी अंधकार क़ी सही अवधि तो

उसे मिल ही रही होती है। इसलिए बसन्त या शुरुआती गर्मी में फूल खिलते हैं। और बीजों के बनने तक पोषण भी पर्याप्त मात्रा में मिल पाना संभव होता है। इसे **वर्नेलाईज़ेशन या शीत प्रभाव** कहते हैं।

हर सवाल का जवाब नहीं

आखिर फूलों की बात हो और बांस बीच में न आए, तो कैसे काम चले। बांस के बारे में सभी जानते हैं कि यह जीवन में एक बार ही फूलता है और फूलने के बाद समाप्त हो जाता है। यह भी सर्वविदित है कि जब बांस का एक जंगल फूलने पर आए तो बस शामत है। क्योंकि तब सारे बांस नष्ट हो जाते हैं। अब बांस में ऐसी क्या प्रक्रिया है? किसी प्रकार से एक पेड़ का संकेत दूसरे तक पहुंच रहा है, ऐसा लगता है। आप समझ रहे होंगे कि अब बांस के इस पेचीदा बर्ताव का कुछ जवाब मिलेगा। यह आपकी गलतफहमी है। अलग-अलग तरह की अटकलें ज़रूर लगाई गई हैं परन्तु अभी हमें इसका पक्का जवाब नहीं मालूम ।

दिन-रात की लंबाई के और भी कई असर होते हैं। आलू कब बढ़ेगा, प्याज में रस कब ज़्यादा भरेगा, पेड़ ज़्यादा लंबे कब होंगे, पत्तियां ज़्यादा कब निकलेंगी आदि बातों पर दिन-रात का बड़ा असर होता है। यहां तक कि उजाले-अंधेरे का ज़्यादा हेरफेर करने से एकलिंगी पौधे का लिंग भी बदल

खेती पर प्रभाव

इस फूल खिलने की प्रक्रिया की समझ बनने से दुनिया में खेती पर भी बहुत असर पड़ा है। कुछ फसलें रातों की खास लम्बाई और कम तापमान पर फूलने के कारण विशेष इलाकों में ही पैदा होती थीं। अन्य जगहों पर लगाने की कोशिश करने पर इनमें न तो फूल लगते थे और न बीज बन पाते थे पर अब कृत्रिम रूप से अंधकार और ठंड की अनुकूल स्थितियाँ बनाकर ऐसी फसलों को कहीं भी किसी भी नए इलाके में उगाया जा सकता है।

जाने के समाचार हैं। इन सब उलझन भरे सवालों पर खोज जारी है और शायद काफी समय जारी रहेगी। फूलों के खिलने में और उनकी सुगन्ध में जाने और कितने सवाल हैं, जिनके हमें उत्तर नहीं मालूम। पता नहीं अंधेरे-उजाले से शुरू हुई बात कहां जाकर रुकेगी।

(सुशील जोशी- विज्ञान एवं पर्यावरण विषयों पर सतत् लेखन।)

●●●

आप भी सोचिए

हाथी और उसका बच्चा

हाथी पानी कैसे पीता है? यह भी क्या सवाल हुआ, आप कहेंगे कि वो तो सबको मालूम है – सूंड से। कोई ज़्यादा सटीक जवाब देगा तो कहेगा कि सूंड में भरकर फिर मुंह में डाल लेता है। सही कहा यह तो सबको मालूम है।

तो फिर अब यह बताइए कि **हाथी का बच्चा** दूध कैसे पीता है?
अगर इस गुत्थी को आप सुलझा पाएं तो हल हमें ज़रूर लिख भेजिए।

न फफूंद न काई एक नई इकाई

● दीपक वर्मा, किशोर पंवार

मसाले में डालते हैं और पढ़ते हैं कि टुंड्रा प्रदेश में मिलती है। आखिर क्या बला है यह लाइकन?

|ब हम भूगोल की किताब में टुंड्रा प्रदेश की वनस्पतियों के बारे में पढ़ा करते थे तो कई-बार लाइकन का ज़िक्र आता था। यह नाम हमेशा अबूझ बना रहा। और हम चकित ही रह गए जब एक दिन गरम मसाला पीसते समय एक जीव-विज्ञानी मित्र ने छबीला (जिसे पत्थर फूल भी कहते हैं) उठाया और कहा, 'यह भी एक लाइकन है।' पर वो तो बर्फीले टुंड्रा प्रदेश में होती है – वहां की कोई चीज़ हमारी रसोई में कैसे आ टपकी है!! और जब इसी छबीले का सिरा पकड़ कर आगे बढ़े तो मालूम पड़ा कि वनस्पति जगत का यह विचित्र पौधा हमारे आसपास के जंगलों और चट्टानी इलाकों में भी खूब मिलता है।

लंबे समय तक वैज्ञानिक भी लाइकन के अनोखेपन से परिचित नहीं थे। वे इसे काई और फफूंद के बीच का ही कोई पौधा मानते थे। 1868 में मालूम पड़ा कि इस एक वनस्पति में दो अलग-अलग पौधे मौजूद हैं – फफूंद और काई (शैवाल)। काई तो हम जानते ही हैं और फफूंद वही जो अचार, ोटी आदि पर लग जाती है। लाईकन में ये दोनों एक दूसरे से एकदम गुंथे रहते हैं।

क्यों रहते हैं साथ-साथ

एक दूसरे पर निर्भर रहते हुए साथ-साथ रहने को सहजीवन (symbiosis) कहते हैं। फफूंद और काई के लाइकन के रूप में सहजीवन जीने के पीछे अपनी-अपनी ज़रूरतें हैं। फफूंद में क्लोरोफिल नहीं होता इसलिए वह

खुद अपना खाना नहीं बना सकती। वहीं काई में क्लोरोफिल होता है, वह अपने लिए भोजन तो खुद बना लेती है लेकिन हवा या ज़मीन से पानी खींचने का कोई तरीका उसके पास नहीं है और अधिक गर्मी उसके लिए घातक है। इसीलिए उसे नम वातावरण रास आता है। आमतौर पर फफूंद सिर्फ ऐसी जगहों या पदार्थों पर ही जम सकती है जहाँ उसे पोषण मिल सके। इसीलिए रोटी, अचार जैसी चीज़ों पर फफूंद एकदम से लग जाती है । और दूसरी तरफ काई केवल नमी भरी कम तापमान वाली जगहों पर ही होती है। लाइकन के रूप में साथ-साथ रहते हुए दोनों ऐसी जगहों पर भी पहुँच जाते हैं जहाँ उनके लिए स्वतंत्र रूप में रहना असंभव होता! क्योंकि लाइकन में फफूंद, काई को वातावरण से सोखी नमी, खनिज पदार्थ और छाया देती है। बदले में काई उसे खाना बनाकर देती है।

इसी सहयोग की वजह से लाइकन संसार के कठिन से कठिन वातावरण में भी आसानी से रह लेती है, ऐसी जगह पर भी जहां दूसरी किसी वनस्पति को पनपने में बहुत मुश्किल होती है। पूरी दुनिया में लाइकन की 15 हज़ार से भी अधिक प्रजातियां मिलती हैं। कुछ पत्तीनुमा होती हैं और पेड़ के तनों व चट्टानों पर उगती हैं (इसीलिए इन्हें पत्थरफूल भी कहते हैं) तो कुछ तंतुनुमा होती हैं और पेड़ की टहनियों पर फैल जाती हैं। जहां ये नौ फीट तक लंबी हो जाती हैं। कुछ लाइकन आलपिन की टोपी जितनी छोटी भी होती हैं।

कैसे-कैसे लाइकन

तीन तरह के होते हैं लाइकन– क्रुस्टोज़, फोलियोज़ और फ्रुटिकोज़। तीनों अलग अलग वातावरण में

क

पनपते हैं। दानेदार पपड़ी जैसा दिखने वाला क्रुस्टोज़ पेड़ के तनों और ज़मीन से चिपका रहता है। पीले, हरे-नारंगी या हरे धब्बों के रूप में यह हमारे आसपास के चट्टानी इलाकों या पेड़ के तनों पर देखा जा सकता है। रेगिस्तानी इलाकों के अलावा यह आर्कटिक और आल्पाइन क्षेत्रों में भी मिलता है। फोलियोज़ पत्ती जैसा दिखता है। यह उन क्षेत्रों में मिलता है जहां लगातार वर्षा होती रहती है। वहीं फ्रुटिकोज़ शाखादार होता है।

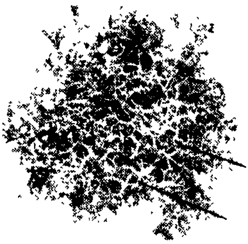

ख

(क) पेड़ की डाली पर लगा फोलियोज़ लाइकन (ख) तंतुनुमा फ्रुटिकोज़ लाइकन, छवीला भी कुछ इसी तरह दिखता है (ग) चट्टान से चिपका सफेद धब्बे-सा दिखता क्रुस्टोज़ लाइकन

इसका घर ऐसे क्षेत्र हैं जहां वातावरण में खूब नमी होती है जैसे समुद्र के किनारे और जलीय इलाकों से सटे पहाड़ी क्षेत्र।

बनावट और प्रजनन

लाइकन के शरीर को थैलस कहते हैं। थैलस का अधिकांश भाग फफूंद के तंतुओं (hyphaes) का बना होता है। पर साथ ही बीच के हिस्से में काई की कोशिकाएँ फंसी-सी रहती हैं। ऐसा दिखता है मानो फफूंद के तंतुओं के घने बुने हुए जाल में काई की कोशिकाएँ फंसी हुई हों।

यह जानना ज़रूरी है कि फफूंद और काई कहीं भी मिल जाने पर लाइकन नहीं बन जाती। लाइकन तो विकास (evolution) के किसी चरण में बनी थी और आज सिर्फ लाइकन के टूटने, बिखरने से ही नयी लाइकन उगती या पनपती है।

इसका प्रजनन दो तरह से होता है। एक तो लाइकन का थैलस टूटने (fragmentation) से। टूटा हुआ टुकड़ा नया लाइकन बन जाता है। दूसरी तरह का प्रजनन सोरेडियम से होता है। यह थैलस में बनने वाली एक विशेष रचना है जो लाइकन की सतह पर पड़े धूल के कणों जैसी दिखती है। इसमें काई की कोशिका को चारों

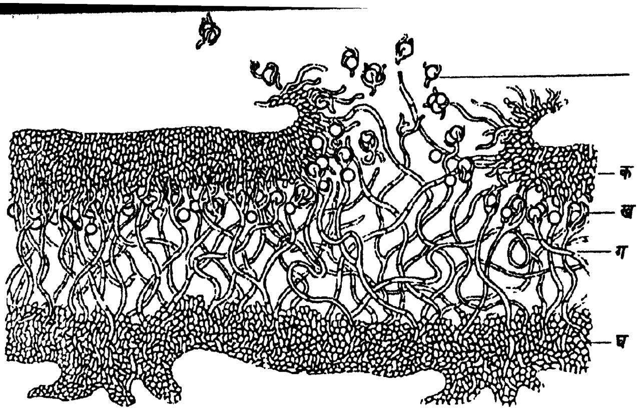

(अ) सोरेडियम: जिसमें काई की एक कोशिका के चारों तरफ फफूंद के तंतु लिपटे हुए हैं।

थैलस की संरचना: चार तहों में ऊपर से पहली *(क)* और चौथी *(घ)* फफूंद के घने तंतुओं की है। दूसरी तह *(ख)* में काई की कोशिकाएं हैं जो फफूंद के तंतुओं की विरल तह *(ग)* के बीच फंसी हुई हैं।

ओर से फफूंद के तंतु घेरे रहते हैं। हवा से सोरेडियम फैल जाते हैं और नई जगह पर बढ़कर नया लाइकन बनाते हैं।

बढ़ती है कछुए की चाल

इसके बढ़ने की गति बहुत धीमी होती है। क्रुस्टोज़ एक साल में एक मि.मी. से भी कम बढ़ता है। तो फोलियोज़ और फ्रुटिकोज़ कुछ से.मी.। लाइकन के पास पानी जमा रखने की क्षमता नहीं होती। उसे लगातार वातावरण से नमी सोखते रहना पड़ता है। वह उस सतह से भी पानी नहीं खींच पाती जिससे चिपकी रहती है। इसलिए गर्मी के दिनों में ये सूखने लगती हैं। लेकिन लाइकन के सूखने का मतलब उसका मर जाना नहीं है। बल्कि यह उसके लिए एक प्रकार का सुरक्षा कवच है। नमी से मुक्त लाइकन में गर्मी सहने की क्षमता बढ़ जाती है। इस तरह गर्मी में सूखने और जाड़े व बरसात के नम मौसम में बढ़ने से उनकी वृद्धि अनियमित-सी होती है। ठंड के दिनों में अनुकूल मौसम मिलने से लाइकन तेज़ी से बढ़ती है।

उपयोग

हम सबने किताबों में पढ़ा ही है कि टुंड्रा प्रदेशों में लाइकन पशुओं का प्रमुख चारा है। अपने घरों में भी गरम मसाले में सुगंध के लिए हम इसका लंबे समय से उपयोग कर रहे हैं। आइसलैंड मॉस नाम का एक लाइकन दवाई के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। डायबिटीज़ नियंत्रित करने, भूख बढ़ाने और सरदी, जुकाम के इलाज में यह उपयोगी माना जाता है। असनिक नाम के एक अम्ल का, जो कुछ तरह के लाइकन से मिलता है, कई देशों में हल्के घाव, इन्फेक्शन आदि के उपचार में उपयोग होता है।

विज्ञान किट में लाइकन

अम्ल और क्षार की बात तो विज्ञान कक्षा में हमेशा उठती ही है। उनकी जांच-पड़ताल के लिए प्रयोग भी होते हैं - लिटमस पेपर के बगैर तो इन प्रयोगों में काम ही नहीं चलता। क्या फटाफट रंग बदलता है – लिटमस। कभी लाल तो कभी नीला। कभी सोचा भी नहीं होगा कि यह बनता किस चीज़ से है – यह बनता है ऑर्किल नाम के रंजक (dye) से। और यह रंजक बनता है लाइकन से! सही है न - विज्ञान किट में लाइकन।

रंगीला लाइकन

लाइकन की खोज में जब होशंगाबाद के पास वाली छोटी-सी पहाड़ी पर पहुँचे तो पीला लाइकन भी दिखा और काई जैसे रंग वाला भी। इसी तरह लाल नारंगी रंग के लाइकन भी मिलते हैं। आखिर कहां से मिलते हैं लाइकन को यह अलग-अलग रंग? दरअसल प्रकाश संश्लेषण की क्रिया में थैलस में कई प्रकार के कार्बनिक यौगिक भी बनते हैं जो वहीं इकट्ठा होते रहते हैं। यही यौगिक ज़िम्मेदार हैं लाइकन के रंगबिरंगेपन के लिए।

पहले ऊन और सिल्क को रंगने के लिए जो प्राकृतिक रंग इस्तेमाल किए जाते थे वे लाइकन से ही बनते थे। अब इन का स्थान सिंथेटिक रंगों ने ले लिया है।

पिछले कुछ सालों के दौरान हुए अध्ययनों से समझ में आया है कि लाइकन प्रदूषण के प्रति काफी संवेदनशील होती है - इसलिए शहरों और प्रदूषित इलाकों में कम ही देखने को मिलती है। इसी वजह से आजकल शोध का एक प्रमुख विषय यह है कि क्या प्रदूषण फैलाने वाले पदार्थों का पता लगाने के लिए लाइकन का इस्तेमाल किया जा सकता है। यानी कि यह पता लगाने की कोशिश की जा रही है कि विभिन्न गैसों, पदार्थों आदि का लाइकन की वृद्धि पर क्या असर पड़ता है।

तो बात शुरू हुई छबीले से और कहां तक पहुंच गई। हमने तो सोचा था कि लाइकन सिर्फ ठंडे ध्रुवीय इलाकों में मिलती है। पर ऐसा नहीं है। हां, वहां की यह एक प्रमुख वनस्पति है, जबकि अन्य क्षेत्रों में प्रमुख वनस्पति तो नहीं है लेकिन मिलती ज़रूर है। अब देखिए न हमारी रसोई में ही निकल आई!

(दीपक वर्मा - संदर्भ में कार्यरत । किशोर पंवार- शास. महाविद्यालय, सेंधवा, खरगोन, म.प्र. में वनस्पति विज्ञान के प्राध्यापक। विज्ञान लेखन में सक्रिय।)

अनारको का पहला दिन

सत्यु

अनारको बात-बात पर सवाल करती है -- और सही जवाब न मिलने पर झुंझलाती है -- बड़ों की तरफ से थोपे गए अनावश्यक अनुशासन से विद्रोह करती है -- सोचती है कि वह क्या करे, क्या बने यह सब पापा और मम्मी ही क्यों तय करते हैं? वे उसकी अपनी इच्छा जानने की कोशिश क्यों नहीं करते? कई बार बैठे-बैठे अनारको ख्यालों में खो जाती है और कल्पना में वह सब देखना शुरू कर देती है जो वह अपने लिए चाहती है। 'अनारको के आठ दिन' शीर्षक से लिखी किताब एक फैंटेसी कथा है, जिसमें अनारको के आठ सपनों का ज़िक्र है। ऐसा है अनारको का पहला सपना।

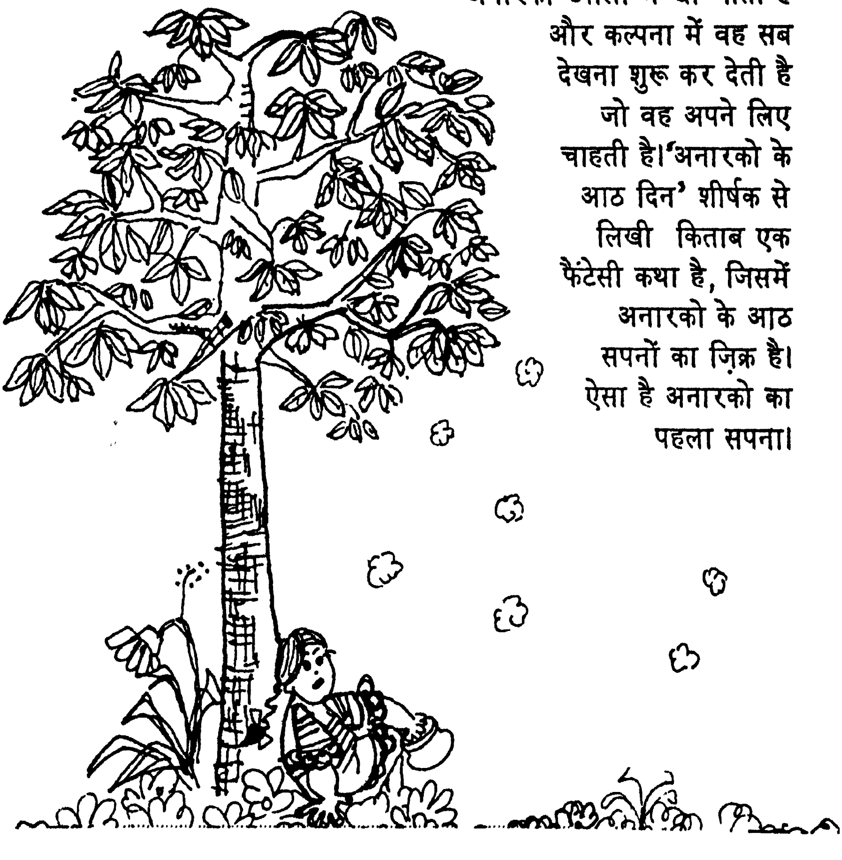

अनारको एक लड़की है। घर में लोग उसे अन्नो कहते हैं।

अन्नो नाम छोटा जो है, सो उस पर हुक्म चलाना आसान होता है। अन्नो, पानी ले आ, अन्नो धूप में मत जाना, अन्नो बाहर अँधेरा है – कहीं मत जा, बारिश में भीगना मत, अन्नो! और कोई बाहर से घर में आए तो घरवाले

कहेंगे – ये हमारी अनारकली है, प्यार से हम इसे अन्नो कहते हैं। प्यार— हुँ-ह-ह !

आज अनारको का मूड खराब है। सुबह-सुबह माँ ने बिस्तर से उठा दिया और कहा कि ये लोटा ले और मंदिर में ठाकुर जी को जल चढ़ा आ। अनारको ने पूछा कि ठाकुर जी को जल क्यों चढ़ाएँ? तो माँ ने कहा, "ठाकुर जी को जल चढ़ाने से वह खुश होते हैं।" अनारको ने पूछा, "ठाकुरजी को खुश क्यों करना?" तो माँ ने जरा ज़ोर से कहा, "ये भी कोई पूछने की बात हुई – चल उठ, और मंदिर जा।" अनारको ने समझाते हुए पूछा, "अच्छा ठाकुर जी क्या सिर्फ मंदिर में रहते हैं?" अम्मा को मौका मिला और झट कहने लगीं, "बेटी, ठाकुर जी तो हर जगह रहते हैं – पत्थरों में, पेड़ों में, घर में, दीवार में, सड़क पर, खेत में और पता नहीं कहाँ-कहाँ।" इस पर अनारको ने कहा, "फिर मैं लोटे का यह पानी बाहर भिंडी के पौधों में डाल आऊँ?" माँ ने इस पर कुछ नहीं कहा। खींचकर उसे बिस्तर से उतारा और जमा दी चपत। सो अनारको लोटे में पानी लेकर निकल पड़ी। वह जानती थी कि क्या करने वाली है! गली के छोर तक, जहाँ तक अम्मी उसे जाते देख सके, वह सीधी जाएगी, फिर अचानक मुड़ जाएगी और लोटे का पानी कहीं भी उलटकर घूमने निकल जाएगी। सो वह

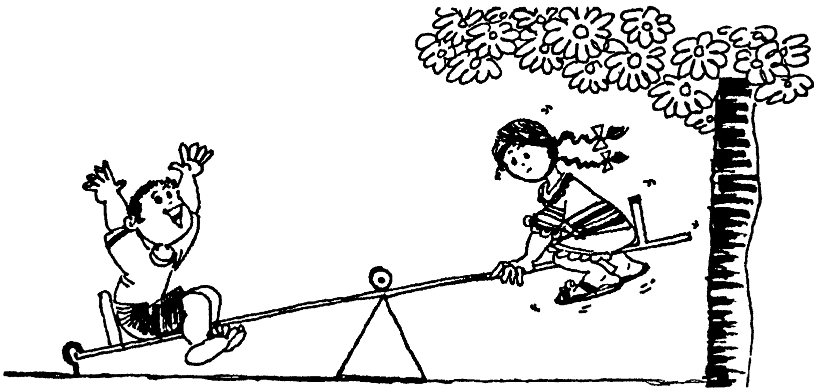

सीधी निकल गई और किया भी वही! रास्ते में और लोग भी लोटा लेकर मंदिर की तरफ जा रहे थे। एक पंडितजी भी जाते हुए दिखे। पंडितजी किसी को समझाते हुए जा रहे– "बेटा, भगवान पर भरोसा रखो। वही सब कुछ ठीक कर देगा। उसकी ताकत अपरम्पार है।"

अनारको ये तो नहीं समझ सकी कि 'अपरम्पार' क्या होता है, पर इतना ज़रूर समझ गई कि पंडित जी कह रहे थे – भगवान के पास बहुत ताकत है। बस, यही सोचते हुए चली जा रही थी कि इतने में किंकु दिख गया, बगीचे में। किंकु सेमल के पेड़ के नीचे लेटा हुआ था। अनारको समझ गई कि किंकु को उसके पिताजी ने सुबह-सुबह ट्यूशन पढ़ने भेजा होगा। पर इधर किंकु तो मज़े से ऊपर सेमल के पेड़ को देख रहा था। ज़रा सी हवा चलती और सेमल की ढोल से फलों की रुई निकलकर हवा में उड़ती जाती। बंबई के लड्डू-सी गोल-गोल, जैसे बादल हों। अनारको को देखा तो किंकु का चेहरा खिल उठा। अनारको ने उससे पूछा, "क्यों किंकु, क्या यह सच है कि भगवान की बहुत ताकत होती है?" इस पर किंकु सोचने लगा। सोचता रहा। फिर बोला, "ये तो मालूम नहीं पर मेरी ताकत तेरे से ज़्यादा है।" अनारको ने समझ लिया कि किंकु बात बदल रहा है, पर उसने जाने दिया और हँस पड़ी। उसने मन-ही-मन सोचा, पतला-सा किंकु अपनी ताकत की डींग मार रहा है और वह भी सुबह-सुबह! सो अनारको ने कहा, "चल जा-जा।" पर किंकु तो अड़ गया। उस तरफ एक झूला बिलकुल सीधा खड़ा था। किंकु ने कहा, "अच्छा चलो वहाँ चलकर सी-सॉ पर बैठें... एक तरफ से उसे तुम दबाओ और दूसरी तरफ से मैं। अपनी-अपनी ताकत लगाकर देखते हैं कि कौन किसको उठा पाता है।"

अनारको झट तैयार हो गई। फिर लगे दोनों दो तरफ से जोर लगाने। अनारको ने खूब जोर मारा, खूब जोर मारा, लंबी साँस खींची, फिर जोर मारा पर किंकु वाला हिस्सा टस से मस ही न हो। जब वह थक गई तो किंकु खिलखिलाने लगा और खूब उछलने लगा। अनारको को कुछ शक-सा हुआ। अंदर ही अंदर कुछ गड़बड़-सा लगने लगा। कुछ सोचकर उसने कहा, "अच्छा चल किंकु, अब जगह बदलकर करते हैं। तू मेरी तरफ आ जा और मैं तेरी तरफ, और फिर दबाते हैं।"

यह सुनकर तो किंकु की हँसी ही गायब हो गई। उसका उछलना भी कम हो गया। पर मन मारकर जैसे-तैसे वह मान गया। इधर अनारको किंकु की तरफ आई तो क्या देखती है कि ज़मीन से एक हुकनुमा लोहे की छड़ निकली हुई है जो सी-सॉ के एक छोर से फँसकर उसे ऊँचा नहीं उठने देती। अनारको किंकु की झूठी ताकत का रहस्य ताड़ गई। उसने मन ही मन सोचा, 'अच्छा बेटा, तो ये बात है! आखिर, तुम्हारा छोर उठे भी तो कैसे!' असल में जब किंकु दबाता था तो वह हुक उसके पीछे होता था और अनारको को वह नहीं दिखता था। एक, दो, तीन कहकर फिर से दोनों दबाने लगे। फिर क्या था, अनारको ने एक झटका लगाया और किंकु महाराज ऊपर! ऐसे ऊपर उठकर गिरे कि धूल में घुलटनियाँ खा गए। उठे, तो नाराज़ी से कहने लगे, "जाओ, हम तुम्हारे साथ नहीं खेलते। हमारी गुलेल लौटा देना शाम को, हाँ।" बस इतना कहा और चल दिए। पर अनारको बैठी रही। उसे जाने की जल्दी नहीं थी, क्योंकि इतना समय तो मंदिर जाने में ही लग जाता। वह जाकर सेमल के पेड़ के नीचे बैठ

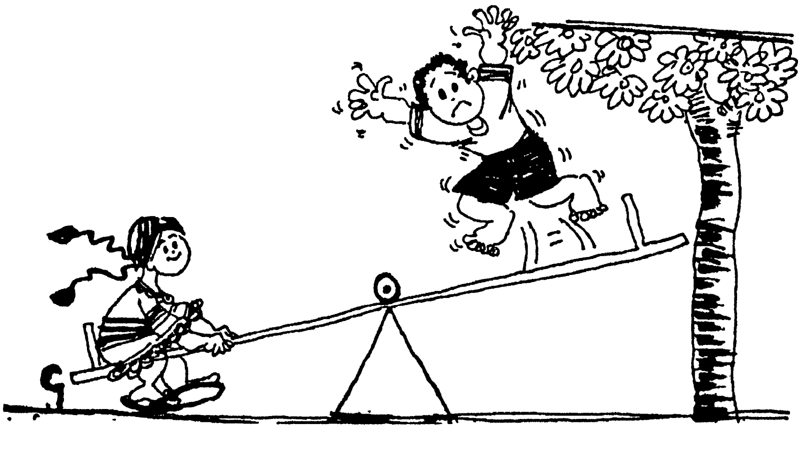

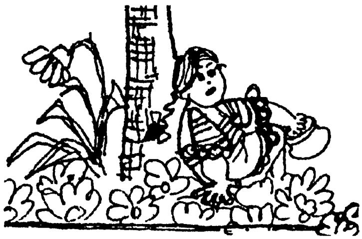

गई, जहाँ उसने अपना लोटा छुपाया था। "जब जगह की अदला-बदली की, तभी समझ में आया कि किसकी कितनी ताकत है।" अनारको बुदबुदा रही थी। फिर सामने रंग-बिरंगी तितलियों और सेमल की रुई का उड़ना देखने लगी। फिर अचानक कुछ सोचने लगी और सोचते-सोचते वह एक जगह पहुँच गई।

उस एक जगह के अंदर एक जगह में वह क्या देखती है कि सामने से अम्मी चली आ रही हैं और पीछे-पीछे पिताजी। फिर अम्मी रुक गई तो पिताजी भी रुक गए। अम्मी घूमकर पापा को देखने लगीं। अरे ये क्या– अम्मी तो अम्मी थीं पर देख ऐसे रही थीं पिताजी की तरफ जैसे पिताजी देख रहे हों। और पिताजी तो पिंताजी थे, पर देख ऐसे रहे थे अम्मी की तरफ जैसे कि अम्मी हों।

अब अनारको को नहीं मालूम, वह किसी को कैसे समझाए। पर उस देखने में ही ऐसा कुछ था कि अम्मी-अम्मी होते हुए भी पापा लग रही थीं और पिताजी पिताजी होते हुए भी अम्मी लग रहे थे। अनारको को अटपटा-सा लगा और काफी मज़ेदार भी। फिर पिताजी मिनमिनाते हुए बोलने लगे, "थक गई होगी बर्तन माँजते-माँजते, बैठ जाओ। मैं चाय बनाकर लाता हूँ।" इस पर अम्मी ने कहा, "छोड़ो जी, मुझे जाना है काम से।" पिताजी ने फिर वैसे ही मिनमिनाते हुए पूछा, "क्या काम है, कहाँ जाना है?" इस बार अम्मा ने डपटकर कहा, "तुम क्या समझोगे हमारे काम की बात! दिन-भर तो बस, कागज़-पत्तर में लगे रहते हो। मुझे किंकु की अम्मी के पास जाना है स्वेटर की नई डिज़ाइन सीखने के लिए।" पिताजी हाथ उठाकर अम्मी को ठहरने के लिए कहने ही वाले थे कि इतने में बगल से किंकु की अम्मा दिख गई। हाथ उठाने में पिताजी की कमीज़ का बटन खुल गया था। अम्मी ने एक बार खुले बटन को और एक बार किंकु की अम्मी को कुछ इस तरह से देखा कि पिताजी ने हड़बड़ाकर बटन बंद कर लिया।

इतने में अनारको उस एक जगह से दूसरी जगह पहुँच गई। पर उस दूसरी जगह पहुँचते-पहुँचते न जाने कैसे अनारको को भान हो गया कि घर

में पिताजी और अम्मा में से किसकी ताकत ज़्यादा है। दूसरी जगह में क्या देखती है कि अरे, ये तो स्कूल आ गया! उसकी क्लास साफ दिख रही थी। उसके सारे साथी बैठे हुए थे – बिट्टो, गोलू, करनल, फुलपत्ती, सूरज और किंकु भी। और मास्टरजी? मास्टरजी अपनी कुर्सी पर एक पैर पर खड़े थे, दोनों कान पकड़े हुए! रोना-सा मुँह हो रहा था उनका। ऊपर से किंकु उन्हें डाँट रहा था, "कहिए, आज फिर पाँच मिनट लेट आए! बाहर खड़े-खड़े भूगोल के गुरुजी से बतिया रहे थे? स्कूल इसलिए भेजते हैं क्या आपको? चलिए, खड़े रहिए।" किंकु छड़ी भी हिला रहा था।

अनारको को फिर से लगने लगा वही अटपटापन और साथ-साथ मज़ा भी आने लगा। इतना मज़ा जैसे उसी मज़े में नहा रही हो। वह खिलखिला कर हँसने लगी। किंकु तो पहले से ही खिसियाया हुआ था। उसने अनारको की तरफ छड़ी फेंकी। छड़ी अनारको को लगी नहीं, पर उसने उसे उठा लिया और उसे लगा कि वह समझ गई कि स्कूल में मास्टरजी और उसके बीच ताकत का रिश्ता क्या है। मास्टरजी रोने-रोने को हो रहे थे, क्योंकि उनकी धोती ढीली हो रही थी और किंकु था कि कान से हाथ छोड़ने ही न दे! अजीब नज़ारा था।

अनारको को पता नहीं क्यों, मास्टरजी पर थोड़ी दया आने लगी। सो दया करते-करते वह उस एक जगह में एक तीसरी जगह पहुँच गई। वहाँ कुछ नहीं था। चारों तरफ बस कैसा दूर-दूर-सा। अनारको ने छड़ी को पैर पर बीचोबीच रखा और ज़ोर लगाकर तोड़कर फेंक दिया, उस कहीं कुछ नहीं वाली जगह में। फिर वह आगे बढ़ गई।

और अब पहुँच गई एक चौथी जगह में। यह चौथी जगह भी उसी एक जगह में थी। अरे, वहाँ तो बहुत हल्ला था। एक डॉक्टर था जिसके हाथ में सुई थी और सामने फुलपत्ती बैठी थी। डॉक्टर एक हाथ से सुई पकड़े, दूसरे हाथ से सर पीट रहा था, और फुलपत्ती थी कि लगी उस डॉक्टर पर चिल्लाने– "अरे, मरीज़ मैं हूँ या तुम? बीमार मैं हूँ या तुम? पेट में दर्द मुझे हो रहा है या तुम्हें? नहीं लगवानी मुझे तुम्हारी सुई!" डॉक्टर रोते-रोते गिड़गिड़ा रहा

था, "प्लीज़, एक बार लगा लेने दो। प्लीज़, अगर तुम्हें सुई नहीं लगी तो मुझे पैसे कहाँ से मिलेंगे?" पर फुलपत्ती तो बिलकुल अड़ी हुई थी, टस से मस नहीं हुई। डॉक्टर पसीना-पसीना हो रहा था, उधर अनारको ये नज़ारा देखकर अपनी खिल-खिलाहट नहीं रोक पा रही थी।

हँसते-हँसते वह एक पांचवीं जगह में पहुँच गई। वहाँ एक बगीचा था। बगीचे में सेमल का पेड़ था। पेड़ के नीचे लोटा था, और सेमल की रुई वैसे ही उड़ी जा रही थी। अनारको समझ गई कि यह पाँचवीं जगह उस एक जगह में नहीं है। वह यह भी समझ गई कि अब घर चलने का वक्त हो गया है। सो लोटा उठाया और चल दी घर की ओर। घर आई तो माँ ने पूछा, "क्यों अन्नो, चढ़ा आई ठाकुर जी को जल?" अनारको ने कहा, "हाँ अम्मी, जल चढ़ाया, फिर ठाकुर जी बहुत खुश। उन्होंने हमारे गाल पर चुम्मी ली, खाने को लड्डू भी दिया और कहा है कि कल भी ज़रूर आना।" इतना कहकर अनारको अंदर कमरे की ओर चल दी। बाहर अम्मा हँस रही थीं— "जाने किस दुनिया में खो जाती है पगली!" और अंदर? कमरे में अनारको मुस्करा रही थी।

(सत्यु - भोपाल गैस त्रासदी एवं अन्य जन आंदोलनों से जुड़े हुए। लेखन में गहरी रुचि।)

* 'अनारको के आठ दिन' राजकमल प्रकाशन द्वारा 1994 में प्रकाशित।

शेर और बाघ के पंजे

बाघ या शेर के नाखून उसका हथियार हैं। जिन्हें वह सिर्फ शिकार करने और उसे चीरने-फाड़ने के लिए उपयोग में लाता है। उनकी शारीरिक सरचना ऐसी है कि जब शेर या बाघ चलता है तो वह अपने नाखूनों को एक खास मांसपेशी के सहारे थोड़ा-सा ऊपर उठाकर, मोड़कर पंजे में छिपा लेता है। ताकि ज़मीन से रगड़ खाकर नाखूनों का पैनापन खत्म न हो जाए। इसीलिए जब शेर चलता है तो उसके पीछे सिर्फ पंजे की गद्दियों के निशान मिलते हैं, नाखूनों के नहीं।

सवाल है, तो उठेंगे ही

सुनील जोशी

कल ही की बात है, जब मैं एक स्कूल में बच्चों से बातें कर रहा था। बातें-तो-बातें होती हैं, कभी-भी कहीं-भी घूम जाती हैं। और फिर एक दो लोग बातें करने वाले हों तो भी समझ में आता है, कक्षा में तो 40 से कम छात्र-छात्राएं होते ही नहीं हैं, चर्चा चल पड़ी तो चल पड़ी। कल भी ऐसा ही हुआ। सवालों को लेकर मैं उन सबको बताना चाह रहा था कि आपके मन में जो सवाल उठें उन्हे सवालीराम तक पहुंचाना। वह ज़रूर खत लिखेगा और तुम्हारे सवालों का जवाब देगा । आमतौर पर बच्चे सवाल का मतलब सिर्फ उनके किताबी प्रश्नों से ही लगाते हैं। इसलिए मैने एक दो उदाहरण देने के लिए कुछ सवाल कक्षा में उछाले। फिर क्या था– सवालों का अम्बार-सा लगने लगा।

"गुरूजी छड़ी लेकर ही कक्षा में क्यों आते हैं ?"

"कक्षा में हाथ बांधकर बिल्कुल चुपचाप बैठना ही अनुशासन क्यों कहलाता है?

"नागपंचमी के दिन नाग की पूजा कर दूध पिलाया जाता है लेकिन अन्य दिनों में उसे मारा जाता है! ऐसा क्यों?"

"लड़कियां बाल क्यों बढ़ाती हैं, लड़के क्यों नहीं?" आदि-आदि ।

यही नहीं बड़े लोग उनके साथ जैसा व्यवहार करते हैं उसके बारे में उनके कई सवाल थे।

हां सर, जब हमसे कोई गलती होती है तो हमको डांट पड़े, मार पड़े तो कोई बात नहीं। लेकिन जब वही गलती हमारे घर के बड़े लोग करते हैं तब भी हमें ही सुनना पड़ता है। आखिर ऐसा क्यों?

जब मैने पूछा कि ऐसा कब हुआ तो तुरंत जवाब मिला, "जैसे मान लो मैं कहीं से आ रही हूं और कमरे में कोई सामान पड़ा है - लोटा, गिलास, शीशी कुछ भी। मैं निकली और मेरा पैर सामान से लग गया तो घर के किसी भी बड़े की आवाज़ सुनाई देगी। 'क्यों देख कर नहीं चलती।' कभी-कभी मार भी पड़ जाती है।"

और ठीक ऐसा ही जब उनके साथ होता है तो वे कहते हैं, "देखो ये सामान बीच में रख दिया। ठीक जगह पर सामान रखना तो आता ही नहीं है।"

क्या-क्या सोचते हैं ये बच्चे इसके बारे में मुझे उस बातचीत के दौरान काफी कुछ पता चला। हम जाने अनजाने उनके साथ जैसा व्यवहार करते हैं उसे बच्चे बहुत गौर से देखते हैं और उसी के आधार पर हमारे बारे में अपनी धारणा बनाते हैं।

एक लड़की ने कहा "सर, मेरी पड़ोसन बहुत खराब है। मेरे पापा-मम्मी तो मेरे ऊपर कभी बंदिश नहीं लगाते। जैसे मेरे भैया को रखते हैं वैसे ही मेरे को। हां, घर का काम तो करना ही पड़ता है पर सहेली के घर जाना, खेलना आदि किसी काम में नहीं रोकते - जैसे औरों के घर होता है। लेकिन जो मेरी पड़ोसन है ना, वो हमेशा मेरी मम्मी के कान भरा करती है। कुछ-न-कुछ मेरे बारे में कहती ही रहती है। लड़की बड़ी हो गई है, इसे ज़्यादा घूमने मत दिया करो। ये लड़कों के साथ भी रहती है। अब बताओ मैं लड़को के साथ पढ़ती हूं तो लड़कों के साथ नहीं रहूंगी।"

दूसरी छात्रा ने भी कुछ इसी ढंग की घटना सुनाई। इतना ज़रूर था कि उसका रोष समाज की इस मानसिकता को लेकर कुछ ज़्यादा ही था। उसने बताया कि उसके पापा उसे ज़्यादा चाहते हैं, पर मम्मी से उसकी बहुत ही कम पटती है।

होता अक्सर यही है कि हम बच्चों के ऐसे कई सवालों को नज़रअंदाज कर देते हैं। कभी-कभी तो इन प्रश्नों पर उन्हें डांट भी खानी पड़ती है कि फालतू बातें कम करो, अपनी पढ़ाई में ध्यान दो। और उनके सवालों की वहीं समाधि बन जाती है। फिर नए सवालों को पूछने की हिम्मत कैसे बनेगी।

(सुनील जोशी- पूर्व शिक्षक, अब व्यवसाय में संलग्न)

ज़रा सिर तो खुजलाइए

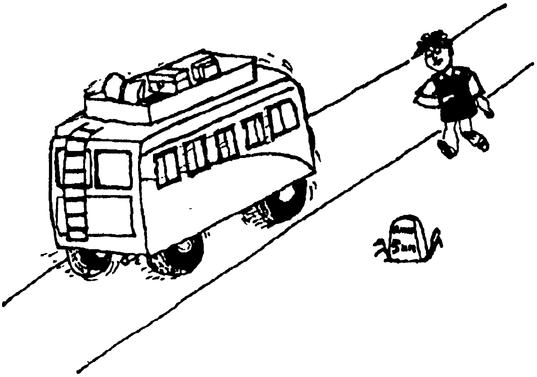

1. घर से स्कूल तक कम-से-कम समय में जाने के लिए आप कौन-सा विकल्प पसंद करेंगे और क्यों?
   अ. आधी दूरी तक चलकर जाना और आधी दूरी तक दौड़कर जाना।
   ब. आधा समय चलकर जाना और आधा समय दौड़कर रास्ता तय करना।

2. एक माली था जिसे पेड़-पौधों को विभिन्न आकृतियों में लगाने में मज़ा आता था। एक बार उसने गुलाब के दस पौधे इस तरह लगाए कि कुल कतारें पांच बनीं और हर कतार में चार पौधे थे। आप भी वैसा ही बाग लगाना चाहेंगे? तो सोचिए उसने पौधे कैसे लगाए होंगे।

3. मैं भोपाल से होशंगाबाद सड़क के किनारे-किनारे समान गति से चल रहा हूं। चलते-चलते मैंने देखा कि मेरे पीछे से यानी भोपाल की ओर से हर बारह मिनट बाद एक ट्रक या बस आती है। और मेरे सामने से यानी होशंगाबाद की ओर से हर चार मिनट बाद एक ट्रक या बस आती है। यदि ट्रक या बस प्रत्येक घंटे में समान दूरी तय करते हों तो भोपाल और होशंगाबाद से कितने-कितने मिनटों के अंतराल के बाद बस या ट्रक छोड़ी जा रही हैं।

पिछले अंक में पूछे गए सवाल का जवाब

हमने जो सवाल पूछा था उसमें छठवां समीकरण इस प्रकार था:

$(क - ग)^2 = (ख - ग)^2$

जहां क = हाथी का वज़न
ख = मच्छर का वज़न
और ग = दोनो के वज़न के जोड़ का आधा

किसी भी संख्या का वर्गमूल ऋण भी होता है और धन भी। उदाहरण के लिए 16 का वर्गमूल लें तो यह -4 भी हो सकता है और +4 भी।

इसीलिए अगर दोनों तरफ से वर्गमूल हटाएं तो दो संभावनाएं बनती है:

$\pm(क - ग) = \pm(ख - ग)$

परन्तु जिस तरह हमने क, ख और ग को परिभाषित किया है उसके कारण (क - ग) धनात्मक होगा और (ख-ग) ऋणात्मक होगा। सही है न?

$(क - ग) = -(ख - ग)$

(पहेली में दिए गए सवाल में गलती यहीं पर थी, उसमें (क - ग) को (ख - ग) के बराबर कर दिया गया था जोकि संभव नहीं है)

इसलिए हमनें जहां से शुरू किया था वापस वहीं पहुंच गए!

$क + ख = 2 ग$

इस सवाल के जवाब में हमें कई हल मिले। उनमें से रामकृपाल सिंह चौहान, (सहायक शिक्षक, शास. उ. मा. वि., खहाली) और आशुतोष रघुवंशी (छात्र, कक्षा 10वीं, सिवनी मालवा, होशंगाबाद) के जवाब सही थे।

कम खर्च में रोशन चमन

● प्रमोद उपाध्याय

रॉड, चोक और स्टार्टर को मिलाकर ट्यूबलाईट तो बन गई। जितनी आसानी से ट्यूबलाईट जलने लगती है, उसे समझना उतना आसान है क्या?

ट्यूबलाईट आजकल लगभग हर घर में पाई जाती है। परन्तु फिर भी हम सब जितना साधारण बल्ब के बारे में जानते हैं, उसकी तुलना में ट्यूबलाईट के बारे में नहीं के बराबर जानकारी होती है। इतना ही नहीं माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं के दौरान भी विज्ञान की पढ़ाई में और बहुत से उपकरणों के बारे मे पढ़ाया जाता है परन्तु वहाँ भी ट्यूबलाईट का कोई खास ज़िक्र नहीं आता। पर दूसरी तरफ अपने आसपास हर कोई उसके साथ खिलवाड़ करता नज़र आता है - ट्यूबलाईट शुरू नहीं हो रही है तो उसकी रॉड को घुमाकर देखो, स्टार्टर को हिलाने से शायद ठीक हो जाएगी.... अगर स्टार्टर नहीं हो तो सिर्फ एक साधारण बिजली के तार से ही काम चला लेते हैं लोग। यहां पर उसके विभिन्न हिस्सों, उनकी रचना व काम और उन्हें कैसे जोड़ा जाता है आपस में, इस सब के बारे में समझने की कोशिश करेंगे।

ट्यूबलाईट का सबसे जाना-पहचाना हिस्सा तो कांच की नली (बोलचाल की भाषा में इसे रॉड कहते हैं) होती है, जिससे हमें रोशनी मिलती है। इसके अलावा दो और हिस्सों को हम सब पहचानते हैं – लोहे के गुटके जैसी बड़ी-सी रचना जिसे चोक कहते हैं और एल्युमिनियम की एक छोटी-सी डिबिया जो स्टार्टर कहलाती है। अब इनके बारे में विस्तार से बात करते हैं।

कांच की नली या रॉड

यह एक कांच की नली होती है जिसे दोनों तरफ से सील (हवाचुस्त) कर दिया जाता है। दोनों सिरों पर एक-एक कुंडली होती है जिनके छोर पिनों के रूप में बाहर निकले होते हैं।

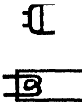

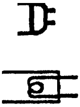

इस कांच की नली में कम दबाव पर पारे की वाष्प भरी जाती है। साथ ही नली में आर्गन, नियॉन, क्रिप्टॉन या इन जैसी अन्य अक्रिय गैसें भी भरी होती हैं।

कांच की नली की अन्दरूनी सतह पर किसी ऐसे पदार्थ (फॉस्फोर) का लेप किया होता है जिस पर अगर पराबैंगनी प्रकाश की किरणें पड़ें तो वह चमकने लगता है और रोशनी देता है।

दोनों कुंडलियां ऐसी होती हैं कि उन्हें गर्म करने से उनमें से इलेक्ट्रॉन निकलने लगते हैं। इन इलेक्ट्रानों और अक्रिय गैस के आयनों के इधर-उधर आने-जाने से दोनों कुंडलियों के बीच विद्युत परिपथ पूरा होता है।

जब ये इलेक्ट्रॉन पारे की वाष्प के अणुओं से टकराते हैं तो पराबैंगनी किरणें पैदा होती हैं। ये कांच की नली की सतह पर लीपे गए फॉस्फोर से टकराती हैं जिससे हमें रोशनी मिलती है। (ऐसी रचना इसलिए क्योंकि पराबैंगनी किरणों को हम देख नहीं सकते। देख पाने के लिए इन्हें अलग तरह की किरणों में बदलना ज़रूरी है)

स्टार्टर

स्टार्टर में दो चीज़ें होती हैं - एक ग्लो-लैम्प और एक साधारण संग्राहक (कैपेसिटर)।

ग्लो-लैम्प में दो धातु की पट्टियां साथ-साथ रखी होती हैं जिनमें बहुत-ही कम फासला होता है। इस ग्लो-लैम्प में से विद्युत धारा बहने पर वह थोड़ा-सा प्रकाशित हो जाता है। इस प्रकाश की

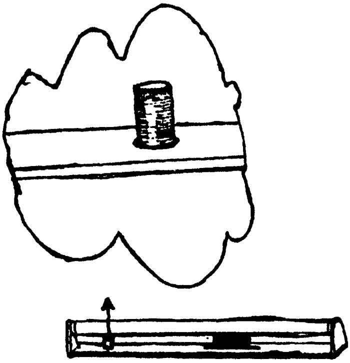

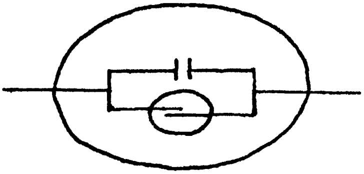

गर्मी के कारण धातु की दोनों पट्टियां फैल जाती हैं और एक-दूसरे से छू जाती हैं।

चोक

चोक में मुख्यत: तांबे के एनेमल चढ़े तार की एक बहुत बड़ी कुंडली होती है। जिसके बीच में लोहे की खूब-सारी पट्टियों से बनी कोर (गुटका) रखी रहती है।

जब भी ऐसी कुंडली में से विद्युत-धारा प्रवाहित की जाए तो हमें मालूम है कि उसके आसपास चुम्बकीय क्षेत्र बनता है। अगर बहने वाली विद्युतधारा ए.सी. हो तो यह चुम्बकीय क्षेत्र लगातार बदलता रहता है। और

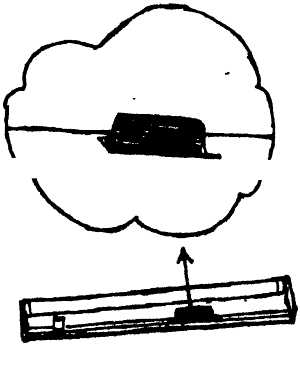

आपको यह भी ख्याल होगा ही कि बदलते हुए चुंबकीय क्षेत्र से विद्युत धारा पैदा होती रहती है।

इस बदलते हुए चुम्बकीय क्षेत्र से पैदा होने वाली बिजली को प्रेरित विद्युत धारा कहते हैं। चोक में भी यही होता है।

इस तरह की कुंडली (चोक) की खासियत यह है कि जब भी परिपथ में विद्युत धारा तेज़ी से बदलती है तो परिपथ में प्रेरित विद्युत धारा एकदम से बढ़ जाती है।

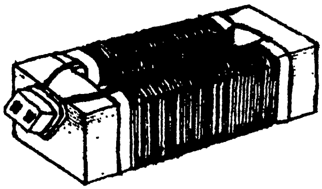

अब देखते हैं कि ये तीनों चीजें आपस में कैसे जुड़ी रहती हैं।

कैसे बनता है परिपथ

इन तीनों हिस्सों की रचना जान लेने के बाद अब देखते हैं कि परिपथ पूरा करने पर ट्यूबलाईट कैसे रोशनी देती है।

- जैसे ही हम स्विच ऑन करते हैं चोक, रॉड की एक कुंडली, स्टार्टर एवं रॉड की दूसरी कुंडली के ज़रिए

विद्युत परिपथ पूरा होता है और स्टार्टर के अन्दर रखा हुआ ग्लो-लैम्प जलने लगता है।

की नली में भरी गई पारे की वाष्प और अक्रिय गैसों में से विद्युतधारा बहने लगती है।

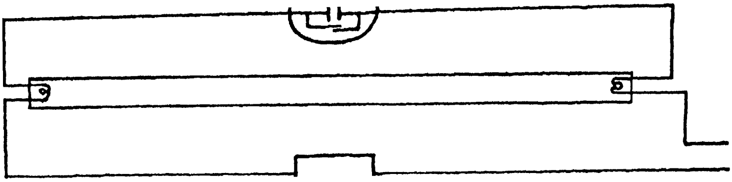

- विद्युत परिपथ पूरा होने से ट्यूब के अन्दर की दोनों कुंडलियां गर्म होकर इलेक्ट्रॉन छोड़ने लगती हैं।
- ग्लो-लैम्प के प्रकाशित होने के कारण उसके अन्दर की दोनों पट्टियां गरमी की वजह से फैलकर एक-दूसरे से छू जाती हैं।
- इससे स्टार्टर शार्ट हो जाता है और इस परिपथ में अचानक विद्युतधारा एकदम बढ़ जाती है।
- इस तरह विद्युतधारा के अचानक बदलने से चोक में भी विद्युतधारा पैदा होती है। बढ़ी हुई विद्युतधारा की वजह से नली की दोनों कुंडलियां खूब गर्म हो जाती हैं।
- इस कारण कुंडलियों में से निकलने वाले इलेक्ट्रॉनों की संख्या अगर पर्याप्त मात्रा में बढ़ जाए यानी कि ज़ोर से धक्का लग जाए तो कांच

इसी दौरान क्योंकि ग्लो-लैम्प की पट्टियां आपस में चिपकी होती हैं इसलिए ग्लो-लैम्प में से कोई प्रकाश नहीं निकलता जिससे अब पत्तियों को गर्मी नहीं मिलती। गर्मी न मिलने की वजह से वे वापस सिकुड़ जाती हैं और उनका आपसी सम्पर्क टूट जाता है। अगर कांच की नली इस बीच प्रकाशित हो जाए तो स्टार्टर के ग्लो-लैम्प को प्रकाशित होने के लिए पर्याप्त मात्रा में विद्युतधारा नहीं मिलती।

आपने देखा होगा कि स्टार्टर सिर्फ ट्यूबलाईट शुरू करने के लिए ज़रूरी होता है। एक बार ट्यूबलाईट प्रकाश देने लगे तो स्टार्टर को अपनी जगह से निकाल लेने पर भी कोई फर्क नहीं पड़ेगा।

स्टार्टर के जलते-बुझने से जो धक्का लगा था अगर वह कांच की नली में से परिपथ पूरा करने के लिए

पर्याप्त नहीं है तो यही प्रक्रिया फिर से दोहराई जाती है।

यानी कांच की नली के प्रकाशित न होने की वजह से स्टार्टर के ग्लो-लैम्प को पर्याप्त विद्युत धारा मिलती है और ग्लो-लैम्प प्रकाशित हो जाता है। इससे उसके अन्दर की पट्टियां गर्मी से फैलकर फिर से आपस में छू जाती हैं।

इसके कारण एक बार फिर शॉर्ट हो कर ग्लो-लैंप बुझ जाता है और इस वजह से चोक में से विद्युत धारा अचानक बदलने से प्रेरित विद्युत एकदम से बढ़ जाती है। जिसे हमने पहले धक्का लगाना कहा था। इससे कुंडलियां और गर्म हो जाती हैं, और ज़्यादा इलेक्ट्रॉन छोड़ती हैं।

यह प्रक्रिया तब तक चलती रहेगी जब तक कि ट्यूबलाईट चालू न हो जाए। इसीलिए जब भी हम ट्यूबलाईट का स्विच ऑन करते हैं तो वह दो-चार बार जल-बुझकर ही शुरू होती है।

इस पूरी प्रकिया में एक और वजह से भी चोक महत्वपूर्ण है। जब रॉड रोशनी देने लगती है तो अचानक उसका प्रतिरोध बहुत कम हो जाता है और उस वजह से परिपथ शॉर्ट हो सकता है। ऐसे में चोक विद्युतधारा की मात्रा को नियंत्रित करने का काम करती है ताकि परिपथ शॉर्ट न हो।

एक बात की तरफ आप का ध्यान शायद गया होगा कि अन्य सब चीज़ों की बात तो हमने कर ली। परन्तु स्टार्टर में लगा हुआ छोटा सा कैपेसिटर (संग्राहक) क्या काम आता है, उसका कोई ज़िक्र ही नहीं आया अब तक। दरअसल संग्राहक ऐसी बहुत सी तरंगों या किरणों को फिल्टर करता है (यानी कम करता है) जिनकी हमें ज़रूरत नहीं है. और जो बिजली के अन्य साधनों में खलल डाल सकती हैं।

ट्यूबलाईट की खासियत यही है – शुरू होने के लिए उसे ज़ोरों का धक्का चाहिए जिसके लिए घरों में आमतौर पर बहती हुई विद्युत धारा नाकाफी है। इसीलिए चोक, स्टार्टर आदि का तामझाम ट्यूबलाईट के परिपथ में करना पड़ता है। लेकिन एक बार शुरू हो जाए तो फायदा ही फायदा है। उसके बाद तो ट्यूबलाईट में बहुत कम बिजली खर्च होती है।

घरों में जब कभी वोल्टेज कम हो जाता है यानी बल्ब दीए जैसी रोशनी देने लगते हैं, पंखा एकदम धीमा हो जाता है -- ऐसे में ट्यूबलाईट शुरू होती ही नहीं है। परन्तु अगर ट्यूबलाईट पहले से जल रही हो तो उस पर कोई असर नहीं होता! ऐसा क्यों?

बाज़ार से बल्ब खरीदते वक्त उसकी रेटिंग देखते हैं न कि 40 वॉट का चाहिए, 60 का या 100 वॉट का। एक साधारण साईज़ के कमरे में पर्याप्त रोशनी के लिए 100 वॉट का बल्ब तो चाहिए ही जबकि एक ट्यूबलाईट उससे कहीं ज़्यादा रोशनी देगी— और उसमें खर्च होती है सिर्फ 40 वॉट ऊर्जा।

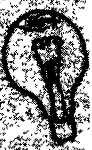

इसीलिए आजकल हर जगह बल्ब के स्थान पर ट्यूबलाईट लगाने की कोशिश की जाती है ताकि बिजली की बचत हो। परन्तु मुश्किल वही है कि अभी भी ट्यूबलाईट बहुत ज़्यादा मंहगी है। अगर किसी तरह उसकी रचना, परिपथ आदि में बदलाव करके उसे थोड़ा सस्ता किया जा सके तो बल्ब की जगह इसे इस्तेमाल करके घरेलू बिजली की खपत को और भी कम किया जा सकता है।

ट्यूबलाईट की रचना समझने का सबसे आसान तरीका यही है कि कहीं से खराब हो चुकी रॉड, स्टार्टर और चोक ढूंढ लिए जाएं और फिर विद्यार्थियों को साथ लेकर उन्हें खोलकर देखा जाए। चोक को खोलने में एहतियात बरतनी पड़ती है, क्योंकि उसे तोड़ते-खोलते वक्त इतना ज़ोर आजमाना पड़ता है कि चोट लग सकती है। स्टार्टर खोलकर उसके अन्दर के ग्लो-लैम्प को तोड़ कर देखने से धातु की पट्टियों वाली रचना समझ में आएगी।

(प्रमोद उपाध्याय - नेशनल इन्स्टिट्यूट ऑफ इम्युनोलॉजी, नई दिल्ली में शोधरत। दिल्ली विश्वविद्यालय के साइंस सेन्टर के साथ महंगे व जटिल उपकरणों के सरल विकल्पों के विकास में सक्रिय।)

पृथ्वी पर गर्मी और सर्दी

बड़ी कक्षा के छात्रों के दिमाग में भी पृथ्वी की गति और मौसम परिवर्तन की छवि साफ नहीं हैं। आखिर दोष किसे दें?

● यमुना सनी, रश्मि पालीवाल

कक्षा 10 के बच्चों से मिलने का यह हमारा दूसरा मौका था। दो दिन पहले हमने उनकी कक्षा में जा कर उन्हें एक प्रश्न पत्र भरने के लिए दिया था। प्रश्न पत्र में दिन-रात के होने और पृथ्वी पर ऋतु परिवर्तन के बारे में आठ सरल प्रश्न थे। छात्रों ने उनके उत्तर लिख कर दे दिए थे। वैसे तो हमने उस दिन भी उनसे बहुत ज़ोर दे कर कहा था कि डरना घबराना नहीं, और प्लीज़ नकल मत करना - यह परीक्षा नहीं

है। इसमें कोई पास-फेल नहीं होगा। हम सिर्फ यह जानना चाहते हैं कि कौन-सी बातें छात्रों को कैसे समझ आती हैं - इसलिए जैसा समझ में आया वैसा ही सब अपना-अपना लिख देना। फिर भी हमें पता था कि लिखना आसान काम नहीं है और हमें आराम से बैठकर बच्चों से बातचीत भी करनी चाहिए। बच्चों की समझ के बारे में जानने के लिए हम सिर्फ लिखित प्रश्न पत्र के सूत्र पर निर्भर नहीं रहना चाहते थे। हम मौखिक, अनौपचारिक बातचीत के सूत्र से भी स्थिति की जांच करना चाहते थे। इसीलिए हम दुबारा स्कूल गए।

कैसे बदलती हैं ऋतुएं

आज 10वीं में 22 छात्र थे। हम सब बाहर की गुनगुनी धूप में जा कर बैठे। सर्दियों के दिनों में इससे ज़्यादा सहज बात और क्या हो सकती थी।

हमने कहा - तुम सबने लिख कर तो समझाया है कि पृथ्वी पर ऋतुएं कैसे और क्यों बदलती हैं। चलो अब ज़रा कुछ कर के समझें। यह गेंद लो। मान लो यह पृथ्वी है। और...ये रहा एक पत्थर। इसे यहां बीच में रख देते हैं। यह बन गया अपना सूरज। अब बताओ कि क्या होता है तो पृथ्वी पर कहीं गर्मी पड़ती है और क्या होता है तो कहीं सर्दी पड़ती है?

एक छात्र ने गेंद को पत्थर के चारों तरफ ऐसे घुमायाः

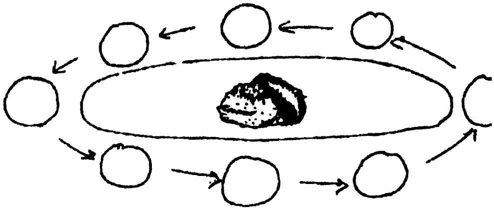

(इसमें गेंद लट्टू की तरह अपने चारों तरफ नहीं घूम रही थी, सिर्फ सूर्य का चक्कर काट रही थी)

वह बोला–"जब पृथ्वी सूरज के पास आई तब वहां गर्मी हो गई। जब सूरज से दूर चली गई तो पृथ्वी पर ठंड हो गई।"

हमने पूछा, "अच्छा ऐसी बात लगती है। क्यों, परसों जो प्रश्नपत्र किया था, उसमें एक प्रश्न था न -

कि जब भारत देश में गर्मी होती है तो ऑस्ट्रेलिया देश में सर्दी क्यों होती है? क्या तुम समझा सकते हो इस बात को?"

वे कुछ सोचने लगे। हम सोच रहे थे कि भारत और ऑस्ट्रेलिया के संकेत से शायद वे गर्मी-सर्दी होने की प्रक्रिया के वास्तविक पहलुओं को भांप पाएंगे (यानी पृथ्वी का अक्ष पर झुकाव और इसके चलते भारत तथा ऑस्ट्रेलिया के अलग अलग गोलार्द्धों में होने से ऋतुओं में अन्तर)। हमारी यह भी उम्मीद थी कि इस उदाहरण से वे यह साफ अहसास कर पाएंगे कि जब पृथ्वी कथित रूप से सूरज के पास आती है तब भी पूरी पृथ्वी पर गर्मी नहीं होती। कुछ जगहों पर तभी ठण्ड पड़ती है – यानी ऋतुओं के लिए कुछ और बात ज़िम्मेदार है।

बच्चे मुद्दे की गंभीरता को महसूस तो कर रहे थे। एक ने कहा– "भारत और ऑस्ट्रेलिया पृथ्वी की अलग-अलग तरफ हैं। जिस तरफ सूरज का प्रकाश मिल रहा है वहां गर्मी होगी, और जिस तरफ प्रकाश नहीं मिल रहा वहां सर्दी होगी।"

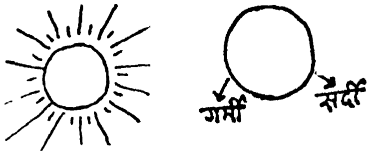

मामला धीरे-धीरे काफी नाज़ुक हो चला था। अब साफ था कि दिन-रात की प्रक्रिया के साथ गर्मी सर्दी होने की प्रक्रिया उलझ गई है। हमने गुत्थी के एक तार को कम-से-कम अलग कर डालने के उद्देश्य से पूछा, "अगर ऐसा लग रहा है तुम्हें, तो वो पहले वाली बात शायद ठीक नहीं है – है न...? कि पृथ्वी सूर्य के पास आती है तो गर्मी होती है?"

सब खामोश रहे। आखिर कितना सोच सकते थे ऐसे मुद्दों पर। इतने में एक लड़की अचानक बोल उठी, "ऑस्ट्रेलिया व भारत अलग-अलग तरफ नहीं हों तो?"

दिलचस्प सुझाव था, और हमारी दृष्टि में सही दिशा का सुझाव था। तो हमने तपाक से ग्लाब मगवाया और सबने

देखा कि वाकई भारत व ऑस्ट्रेलिया पृथ्वी पर एक ही तरफ हैं।

अब तो बचाव का कोई रास्ता नहीं था। अब कैसे समझाया जाए कि इन दो देशों में एक साथ गर्मी क्यों नहीं होती?

सब असमंजस में कसमसा रहे थे। फिर कुछ देर बाद एक लड़की बोली–"ऑस्ट्रेलिया भूमध्यरेखा के ज़्यादा पास है ..... इसलिए ....."

"इसलिए क्या ....?

फिर थोड़ी चुप्पी। गतिरोध को हटाते हुए हमने ग्लोब पर देखा कि असल में भारत भूमध्यरेखा के ज़्यादा पास है।

"खैर, तो क्या होता है भूमध्यरेखा के पास होने से?"

उसने कहा "सूरज की किरणें जब पृथ्वी पर बहुत ज़्यादा गिरती है न, तब भारत पर सीधी किरणें पड़ती

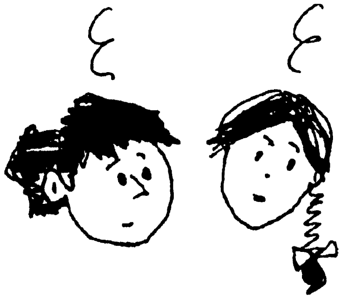

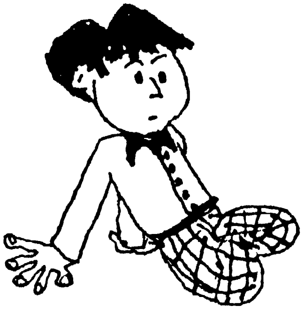

हैं और ऑस्ट्रेलिया पर तिरछी किरणें पड़ती हैं ...."

"हुं .... और आगे समझाओ ..... लो यह ग्लोब लेकर अपनी बात समझाओ।" उसने ग्लोब लिया और उसे धुरी पर घुमाने लगी। बोली,"जब पृथ्वी घूमती है न तब सूरज की सीधी किरणें भारत पर पड़ती हैं और तिरछी किरणें ऑस्ट्रेलिया पर पड़ती हैं।"

इसके आगे बात पूरी करने में कोई भी समर्थ नहीं था। वही बात बार-बार हो रही थी।

बच्चे ऋतु परिवर्तन जैसी जटिल प्रक्रियाओं के कभी एक छोटे से पहलू को पकड़ते, तो अगले क्षण वह पहलू उनके हाथ से फिसल जाता। वे हाथ पैर मारते हुए लपकते और किसी दूसरे पहलू को झपट लेते - फिर ज़रा-सा कुरेदने पर वह पहलू भी हाथ से फिसल जाता। और आपा-धापी

में कोई और सिरा लपकने की कोशिश शुरू हो जाती।

बातचीत की शुरुआत में सूरज से पृथ्वी की दूरी का मुद्दा उठा, फिर उसे छोड़कर पृथ्वी के गोलाकार रूप का मसला पकड़ा गया (ऑस्ट्रेलिया व भारत को एक दूसरे की उल्टी तरफ स्थित बताकर) और दिन रात के सिद्धान्त का उपयोग ऋतु परिवर्तन के लिए किया गया, फिर इसे छोड़ भूमध्यरेखा से समीपता और आड़ी तिरछी किरणों की बात पकड़ी गई।

कक्षा 10वीं में भी बच्चे पृथ्वी और सूरज के संबंधों को एक सरल और मोटी-मोटी सम्पूर्णता में भी नहीं धारण कर पाए थे। इस स्थिति के लिए कोई शिक्षकों को दोष दे सकता है और कोई बच्चों को। पर निश्चय ही मामला ज़्यादा संगीन है। इस विषय में आपकी क्या राय है?

पाठ्य पुस्तकों में तो पूरी प्रक्रियाएं विधिवत् प्रस्तुत की गई होती हैं। रेखाचित्र भी बने होते हैं। हमने एक बार यह प्रयोग किया था कि वर्तमान के छोटे, गूढ़ पाठों के स्थान पर विस्तृत पाठ लिखें व उनमें और ज़्यादा व स्पष्ट रेखाचित्रों द्वारा ऋतु परिवर्तन की प्रक्रियाओं के सभी चरणों को अलग-अलग समझाएं। ऐसे नए पाठ लिख कर हमने कक्षा 6वीं में परीक्षण किया था। ग्लोब का उपयोग भी अच्छे से किया। फिर भी, हमारा निष्कर्ष निकला कि बच्चे इन बातों को समझने में बहुत ज़्यादा कठिनाई महसूस कर रहे हैं।

इस संबंध में आपके अनुभव क्या हैं?

हमने तो उस दिन बच्चों से बातचीत वहीं समाप्त कर दी थी। क्योंकि आगे बढ़ने का सिरा नहीं मिल रहा था, और बच्चों को प्रताड़ित करने की हमारी कतई मंशा नहीं थी।

फिर भी आगे बढ़ने के रास्ते तो किसी तरह ढूंढने ही होंगे। हम अभी भी इस मुद्दे पर सोच रहे हैं – और आपकी सोच भी जानना चाहेंगे।

(दोनों एकलव्य के सामाजिक अध्ययन शिक्षण कार्यक्रम से जुड़ी हैं)

(संदर्भ के पिछले अंक में हमसे एक चूक हो गई। पृष्ठ 25 पर पाठ्य पुस्तकों में दी गई जानकारी के बारे में जो लिखा गया उसकी जगह होना यह था कि पाठ्य-पुस्तकों की जानकारी के बावजूद छात्रों के मन में यही छवि बनती है कि जब पृथ्वी सूर्य के पास आती है तो गर्मी व दूर जाती है तो सर्दी होती है – संपादक)

पानी को जांचें परखें

क्या इस काम भी आ सकती है स्कूल की प्रयोगशाला?

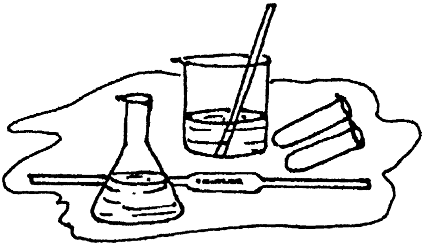

शिक्षा के क्षेत्र में इस बात पर ज़ोर दिया जाना चाहिए कि विज्ञान, पर्यावरण और समाज के बीच जो अंतर्सम्बन्ध हैं उनकी जानकारी विद्यार्थियों को हो। जो कुछ वे अपनी विज्ञान की कक्षा में करते हैं उसका बाहरी दुनिया से सरोकार है कि नहीं – यदि है तो कितना और कैसे? कक्षा की पढ़ाई का उपयोग पर्यावरण के प्रति एक वैज्ञानिक सोच बनाने में कैसे किया जा सकता है?

इन्हीं विचारों के साथ एकलव्य के पिपरिया केन्द्र ने किशोर भारती संस्था और एन्वायरोटेक लिमिटेड, दिल्ली के साथ मिलकर छिंदवाड़ा ज़िले के पिपरिया खदान क्षेत्र में पानी की जांच पड़ताल का एक कार्यक्रम किया। हिस्सा लिया परासिया, और न्यूटन के हाईस्कूलों व पेंच-वैली महाविद्यालय के विद्यार्थियों और शिक्षकों ने। इस पूरे आयोजन के दो प्रमुख उद्देश्य थे:

1. पानी की जांच के सरल तरीके विकसित करना।
2. जांच के इन तरीकों के माध्यम से विद्यार्थियों और शिक्षकों को अपने स्थानीय पर्यावरण की जांच और विश्लेषण के छोटे कार्यक्रम उठाने के लिए प्रेरित करना।

पूरी प्रक्रिया में इस बात का खास ध्यान रखा गया कि जांच के सिद्धांत, उपकरण तथा परिणामों का विश्लेषण हाईस्कूल के विद्यार्थियों की समझ और पहुंच के भीतर हो। ताकि वे अपनी

प्रयोगशाला के उपकरणों का इस्तेमाल करते हुए अपने आसपास के पानी की जांच-परख खुद कर सकें।

इस कार्यक्रम के दौरान विकसित तरीकों में से कुछ हम यहां दे रहे हैं:

पानी का पी.एच. पता करना:

पानी का पी.एच. वह संख्या है जिसे देखते ही पता चल जाता है कि पानी अम्लीय है या क्षारीय। पी.एच. का पैमाना इस तरह से तय किया ... है कि अगर पी.एच. 7 से कम है तो घोल अम्लीय है और अगर सात से ज़्यादा तो क्षारीय। और अगर किसी घोल का पी.एच. ठीक 7 हो तो पता चल जाता है कि घोल उदासीन है – न अम्लीय, न क्षारीय।

कोई घोल अम्लीय है या क्षारीय उसका पता मोटे-मोटे तौर पर लिटमस कागज़ या अन्य किसी सूचक से

पानी का पी.एच. पता करने का तरीका

आवश्यक रसायन: यूनिवर्सल पी. एच. सूचक घोल।

आवश्यक उपकरण: परखनली, पिपेट, ग्रेजुएट्ड पिपेट, यूनिवर्सल सूचक घोल के साथ दिया हुआ मानक रंग-चार्ट।

विधि :

(1) एक परखनली में ग्रेजुएट्ड पिपेट की सहायता से 5 मि.ली. पानी का नमूना लो।

(2) ग्रेजुएट्ड पिपेट से 0.1 मि.ली. सूचक घोल पानी के नमूने वाली परखनली में डालो। ग्रेजुएट्ड पिपेट न हो तो साधारण पिपेट से 4 बूंद सूचक घोल डालो।

(3) मानक रंग-चार्ट के साथ घोल के रंग का मिलान करके पानी का पी.एच. पता करो।

परिणाम

पानी का पी.एच. = रंग के अनुसार अनुमानित संख्या।

लगाया जा सकता है। लेकिन ज़्यादा बारीकी से यह पता करना हो कि अम्ल या क्षार कितना प्रबल है यानी अगर घोल का पी.एच. मान पता करना हो तो यूनिवर्सल सूचक घोल का इस्तेमाल करना पड़ता है। यूनिवर्सल सूचक घोल अर्थात ऐसा घोल जो बहुत से तरह-तरह के सूचकों से मिलकर बना हो।

जिस भी घोल या पानी का पी.एच. पता करना हो उसमें यूनिवर्सल सूचक की चार-पांच बूंद डालने से उसका रंग बदल जाता है। हर यूनिवर्सल सूचक घोल के साथ उसका खास रंग-चार्ट भी मिलता है। यूनिवर्सल सूचक डालने के बाद पानी के नमूने का रंग इस चार्ट से मिलाने पर नमूने का पी.एच. पता चल जाता है।

अगर जांच किए गए पानी का पी.एच. 7 से बहुत कम आता है तो उसमें प्रबल अम्ल मौजूद हैं और अगर सात से बहुत ज़्यादा है तो पता चल जाता है कि उसमें प्रबल क्षार हैं।

पानी की अम्लीयता पता करना

पानी की अम्लीयता का अर्थ है उसमें घुले अम्लों की कुल मात्रा। अक्सर पानी के नमूनों में घुले हुए खनिज अम्लों, कार्बन डाई-ऑक्साइड और कार्बनिक अम्लों के कारण पानी अम्लीय होता है।

खनिज अम्ल काफी प्रबल होते हैं। प्रबल अम्लों का पी.एच. 4.5 से कम ही होता है। मिथाईल ऑरेंज सूचक का इस्तेमाल करके टाइट्रेशन करने से पहले हम इन खनिज अम्लों की मात्रा का पता लगा लेते हैं। (ऐसा कर पाना इसलिए संभव है क्योंकि मिथाईल ऑरेंज सूचक 4.5 पी.एच. पर रंग बदलता है।)

मिथाईल ऑरेंज सूचक का इस्तेमाल करके टाइट्रेशन करने पर भी कमज़ोर कार्बनिक अम्ल तो पानी में बचे ही रहते हैं क्योंकि जब तक प्रबल खनिज अम्ल हैं तब तक वे क्रिया नहीं कर

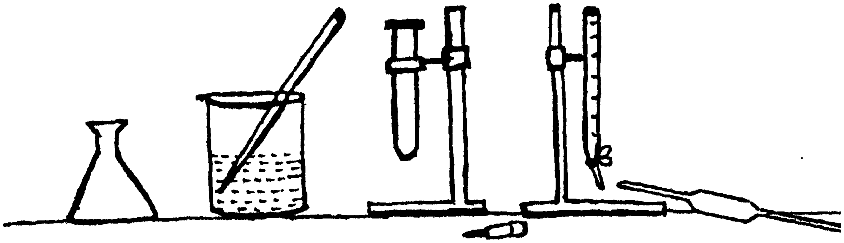

पानी की अम्लीयता पता करने का तरीका

सबसे पहले पानी का पी.एच. पता कर लें। अगर पी.एच. का मान 7 से अधिक हो तो पानी क्षारीय है और उसकी अम्लीयता नापने का कोई अर्थ नहीं है।

आवश्यक रसायनः

(क) कॉस्टिक सोड़ा का मानक घोल (0.02 N)

(ख) मिथाइल ऑरेंज सूचक घोल - 0.1 ग्राम मिथाइल ऑरेंज सूचक एक लीटर आसुत जल में मिलाएं।

(ग) फिनोफ्थेलीन सूचक घोल - 0.1 ग्राम फिनोफ्थेलीन 60 मि.ली. स्पिरिट में घोलकर आसुत जल मिलाकर कुल आयतन 100 मि.ली. कर लें।

आवश्यक उपकरणः ब्यूरेट, पिपेट, टाइट्रेशन फ्लास्क, ड्रॉपर।

विधिः

(1) पहले ब्यूरेट को साफ करके पानी से धोकर उसमें कॉस्टिक सोड़ा का मानक घोल भरकर रीडिंग (क) नोट कर लीजिए।

(2) पिपेट की मदद से नमूने का 20 मि.ली. पानी टाइट्रेशन फ्लास्क में लें। उसमें दो बूँद मिथाइल ऑरेंज सूचक घोल डालिए। अगर घोल गुलाबी हो जाए तो उसे ब्यूरेट में भरे गए कॉस्टिक सोड़ा के घोल से तब तक टाइट्रेट करना होगा जब तक फ्लास्क के घोल का रंग पीला नारंगी न हो जाए। अब ब्यूरेट की रीडिंग (ख) लिख लीजिए।

(3) अब एक अन्य फ्लास्क में 20 मि.ली. के दूसरे पिपेट से नमूने का पानी लो। उसमें दो बूँद फिनोफ्थेलीन सूचक घोल डालो। ब्यूरेट के मानक घोल से तब तक टाइट्रेट करो जब तक फ्लास्क के घोल का रंग गुलाबी न हो जाए। अब रीडिंग (ग) नोट कर लीजिए।

परिणाम

खनिज अम्लता= 50 X (**ख** - **क**) मि.ग्रा. प्रति लीटर

संयुक्त अम्लता = 50 X (**ग** - **ख**) मि.ग्रा. प्रति लीटर

कॉस्टिक सोड़ा का घोल

कॉस्टिक सोड़ा का 1 N घोल 40 ग्राम शुष्क कॉस्टिक सोड़ा में पानी मिलाकर 1 लीटर घोल बनाने पर मिलता है। परन्तु शुष्क कॉस्टिक सोड़ा खुला रखने पर बहुत ही जल्दी नमी सोखता है और तुरन्त गीला-सा हो जाता है।

इसलिए कॉस्टिक सोड़ा का 0.02 N घोल बनाने के लिए अलग प्रक्रिया अपनानी पड़ती है। 40 ग्राम से ज़्यादा शुष्क कॉस्टिक सोड़ा लेकर और फिर उसमें पानी मिलाकर कुल आयतन 1 लीटर कर लिया जाता है। यह है आपका स्टॉक घोल। इसे मानक अम्ल के साथ टाइट्रेट करके इसकी नॉर्मलिटी पता कर ली जाती है। और फिर नॉर्मलिटी के अनुसार स्टॉक घोल में उचित मात्रा में पानी मिलाकर कॉस्टिक सोड़ा का मानक 0.02 N घोल तैयार किया जाता है।

अगर स्टॉक घोल एक नार्मल हो तो उसे 50 गुना तनु करने पर मानक 0.02 N घोल मिलेगा। हर बार प्रयोग के लिए कॉस्टिक सोड़ा का ताज़ा मानक घोल तैयार किया जाना चाहिए।

पाते। और फिर मिथाईल ऑरेंज सूचक के रंग बदलने से तो सिर्फ इतना ही पता चलता है कि 4.5 से कम पी.एच. वाले अम्ल उदासीन हो गए हैं। 4.5 और 7.0 के बीच की पी.एच. वाले सब अम्ल तो अभी भी घोल में मौजूद हैं ही। पानी के नमूने की कुल अम्लीयता यानी कि संयुक्त अम्लीयता पता करने के लिए फिनोफ्थेलीन सूचक घोल का इस्तेमाल करना पड़ता है। क्योंकि फिनोफ्थेलीन सूचक 8.3 पी.एच. पर रंग बदलता है इसलिए उसे पानी के नमूने में डाल कर कास्टिक सोड़ा के घोल से टाइट्रेट करने पर हमें पानी में घुले सब अम्लों की कुल मात्रा पता चल जाती है।

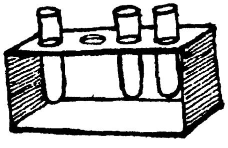

अब अगर सिर्फ कमज़ोर अम्लों की मात्रा पता लगानी हो तो संयुक्त अम्लीयता में से खनिज अम्लीयता घटाने पर वह भी मिल जाएगी।

अब इन सब प्रक्रियाओं और उनमें इस्तेमाल की गई गणनाओं को समझने की कोशिश करते हैं:

1. इस विधि में हम प्रबल अम्लों और कमज़ोर अम्लों की अम्लीयता को अलग-अलग जानने की कोशिश करते हैं। क्योंकि यह जानने से कि पानी के नमूने में प्रबल अम्ल ज़्यादा हैं या कमज़ोर अम्ल, हमें मोटा-मोटा अन्दाज़ लग जाता है कि पानी में कौन-कौन से पदार्थ कम-ज़्यादा मात्रा में घुले हैं। ताकि उसके आधार पर हम तय कर सकते हैं कि अब पदार्थों की मात्राएं पता लगाने के लिए हमें पानी के नमूने में किन पदार्थों की खोजबीन करनी चाहिए।
2. इन जांचों से हमें यह नहीं पता चलता कि पानी में कौन-कौन से पदार्थ घुले हैं और उनकी मात्रा कितनी-कितनी है। हम सिर्फ यह बता सकते हैं कि घुले हुए सब अम्लों के कारण पानी के इस नमूने में कुल इतनी अम्लीयता है।
3. इन सब गणनाओं में अम्लीयता को कैल्शियम कार्बोनेट की मात्रा के रूप में दिखाया गया है। गणना करके जब हमें पता चलता है कि पानी की अम्लीयता 20 मि.ग्रा. प्रति लीटर है तो उसका अर्थ है कि उस पानी को उदासीन करने के लिए 20 मि.ग्रा. कैल्शियम कार्बोनेट की ज़रूरत होगी।
4. इन विधियों की खासियत यह है कि इनमें इस तरह के घोल लिए गए हैं और उनकी मात्रा इतनी तय की गई है कि बिना जटिल गणनाओं के हमें आसानी से अम्लीयता की मात्रा मि.ग्रा. प्रति लीटर में मिल जाती है।

(छिंदवाड़ा क्षेत्र के विद्यार्थियों और शिक्षकों के साथ हुए एक प्रयोग पर आधारित।)

शरीर में जमा होता डी.डी.टी.

आमतौर पर किसी भी नई चीज़ की खोज होते ही हम सब उसपर लट्टू हो जाते हैं और बिना सोचे समझे धड़ल्ले से उसका उपयोग करने लगते हैं।

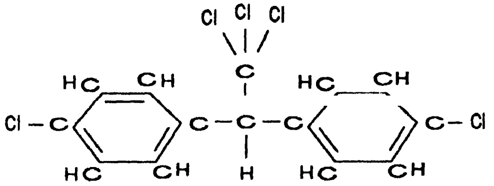

डी.डी.टी की रासायनिक संरचना

डी.डी.टी. की ही बात लें। पचास के दशक में डी.डी.टी. की खोज होने के बाद सत्तर और अस्सी के दशकों में अंधाधुंध इस्तेमाल हुआ इसका - खेतों में, शहरों में, घरों में.... आज भी उसका काफी इस्तेमाल होता है।

बाद में जब अध्ययन हुए तो पता चला कि डी.डी.टी. की एक ऐसी खासियत है जिसके कारण वह सबके लिए अत्यन्त खतरनाक हो सकता है। आमतौर पर हमारा शरीर हानिकारक पदार्थों को तोड़कर खत्म कर देता है या मल-मूत्र-पसीने से बाहर निकाल देता है। परन्तु डी.डी.टी. एक ऐसा यौगिक है जो एक बार किसी के शरीर में पहुंच जाए तो न तो खत्म होता है, न ही बाहर निकलता है - अन्दर ही अन्दर इकट्ठा होता रहता है।

ऐसा इसलिए होता है क्योंकि डी.डी.टी. पानी में अघुलनशील है परन्तु वसा या तेलीय पदार्थों में आसानी से घुल जाता है। इसी वजह से अन्य पदार्थों की तरह शरीर से बाहर निकलने के बजाए डी.डी.टी. जीव-जन्तुओं के शरीर के वसा वाले हिस्सों में इकट्ठा होता रहता है। और फिर जब कोई दूसरा जानवर उसे खाए तो उसके शरीर में जाकर इकट्ठा हो जाता है।

जहां तक मनुष्यों का सवाल है, तरह-तरह से पहुंच जाता है हम तक। सब्ज़ियों, फसलों पर छिड़का हुआ डी.डी.टी. सीधा ही खुराक में। गाय-भैसों के दूध के ज़रिए और मांसाहार करने वाले लोगों में बकरियों, मछलियों .... के मांस में इक्ट्ठा हुआ। मनुष्य के शरीर में यह कितना जमा हो रहा है उसका अंदाज़ा इस तथ्य से भी लगाया जा सकता है कि पिछले कुछ सालों से मां के दूध में भी डी.डी.टी. की मात्रा पाई जा रही है - और इसका प्रतिशत लगातार बढ़ता जा रहा है। अब तक उसके प्रभावों के जो अध्ययन हुए हैं उनसे इतना तो स्पष्ट पता चला है कि वो मनुष्यों के तंत्रिका तंत्र ओर श्वसन तंत्र पर काफी बुरा असर डालता है।

सवालीराम

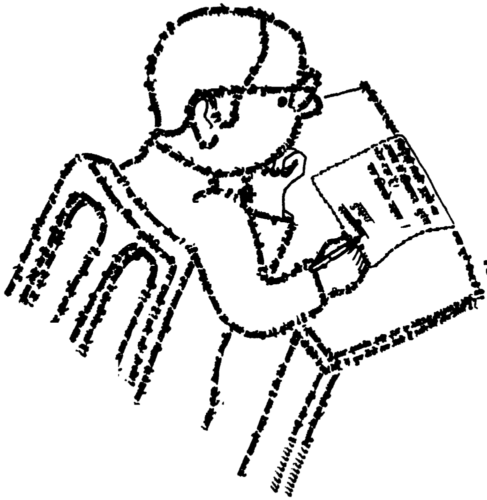

संदर्भ के पहले अंक में सवालीराम से आपका परिचय तो करवा ही दिया था। उसी अंक में सवालीराम ने एक जवाब भी दिया था -- बच्चों द्वारा हवाई जहाज़ के बारे में पूछे गए एक सवाल का। साथ ही हमने आपके सामने भी बच्चों द्वारा पूछे गए कुछ सवाल रखे थे।

उनके जवाब में हमें आपके कुछ खत मिले, जिनमें से एक जवाब इस बार छाप रहे हैं। साथ ही जवाब और सवाल का यह सिलसिला आगे भी जारी रखते हुए........

फूल ज़मीन के ऊपर तो फल नीचे कैसे

प्रश्न - मूंगफली के फूल तो पौधे पर लगते हैं - तो फिर मूंगफली ज़मीन में से कैसे निकलती है?

उत्तर - आमतौर पर इस सवाल की तरफ किसी का ध्यान नहीं जाता परन्तु एक बार कोई पूछ बैठे तो ख्याल आता है की कहीं कोई चक्कर ज़रूर है। पहले लगता है कि कहीं मूली, गाजर, आलू..... जैसा कोई मामला तो नहीं है - पर सोचने पर तुरन्त समझ

में आता है कि मूंगफली है तो बीज ही, उसमें कोई शक नहीं हो सकता। तो फिर यह बीज ज़मीन में कैसे घुस गया? बीज तो फूल से ही बनेगा और ज़मीन के अंदर फूल खिलते हुए तो आज तक नहीं सुना था।

अब देखते हैं कि असल में मामला क्या है। दरअसल मूंगफली का पौधा छोटा-सा झाड़ीनुमा होता है। आमतौर पर ज़मीन से उसकी ऊंचाई 25-50 से.मी. के बीच होती है। अन्य पेड़-पौधों की तरह इसमें फूल तो शाखाओं पर ही लगते हैं - और परागण भी वहीं होता है उनका। पर अन्य पौधों से फर्क यहीं से शुरू हो जाता है।

परागण के तुरन्त बाद फूल का डंठल तेज़ी से बढ़ने लगता है और ढीला-सा होकर नीचे की तरफ लटक जाता है। इसी तरह अगले कुछ दिनों में बढ़ते-बढ़ते फूल, जो अब फली-बीज में तब्दील होने लगा होता है, जाकर ज़मीन पर टिक जाता है। बात यहीं नहीं रुकती, उसके बाद वो फली ज़मीन के अंदर घुसनी शुरू हो जाती है। कुछ तरह की मूंगफली में तो फली 2-4 से.मी. घुसकर रुक जाती है परन्तु कुछ में उससे भी अंदर चली जाती है। इसीलिए हम सबके दिमाग में वही चित्र होता है, खेत से मूंगफली उखाड़कर भागने का - उसके फूलों की तरफ कौन ध्यान देता है!

प्रश्न: साबूदाना कैसे बनता है? क्या होता है उसमें?

उत्तर: एक और सवाल जिसके बारे में सुनते ही लगता है कि इसका जवाब तो पता ही होना चाहिए था क्योंकि साबूदाना तो रोज़मर्रा ज़िंदगी का हिस्सा है। परन्तु फिर भी आमतौर पर जानकारी नहीं होती कि साबूदाना बनता कैसे है - विशेषकर उत्तर भारत में, क्योंकि यह ज़्यादातर दक्षिण भारत में ही बनाया जाता है।

हिंदुस्तान में साबूदाना जिस कंद से बनाया जाता है उसे कासावा या टैपियोका कहते हैं। कासावा वैसे तो दक्षिण अमेरिकी पौधा है लेकिन अब भारत में यह तमिलनाडु, केरल, आंध्रप्रदेश तथा कर्नाटक में भी खूब उगाया जाता है। केरल में इस पौधे को कप्पा के नाम से पुकारा जाता है।

सामान्यत: साबूदाना कासावा के कंदों से बनाया जाता है। इन कंदों में मुख्य रूप से स्टार्च होता है। कंदों से साबूदाना बनाने की प्रक्रिया कुछ इस तरह होती है। कासावा के कंदों को पानी की टंकियों में डालकर गलाया जाता है और फिर उनमें से मिले स्टार्च को धूप में सुखाया जातां है। जब यह पदार्थ लेईनुमा हो जाए तो मशीनों की सहायता से इसे छन्नियों पर डालकर गोलियां बनाई जाती हैं (जैसे बूंदी बनाई जाती है)। इन गोलियों को नारियल का तेल लगाई गई कड़ाही में भूना जाता है और अंत में इन गोलियों को गर्म हवा से सुखाया जाता है। अब साबूदाना तैयार है। तैयार साबूदाने को दाने के आकार, चमक, सफेदी के आधार पर अलग-अलग समूहों में बांटा जाता है।

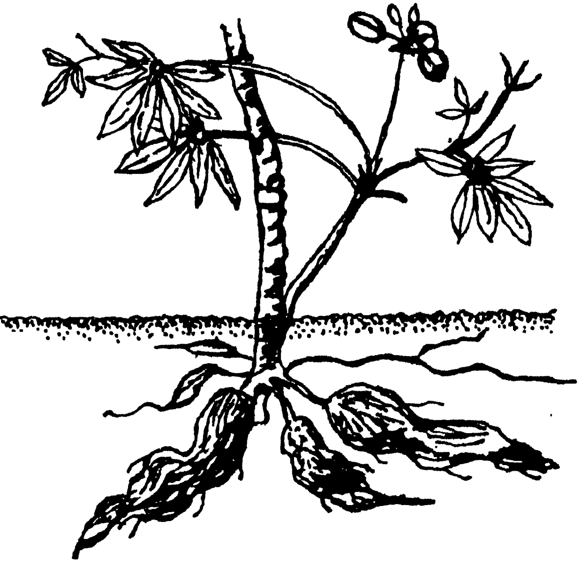

पिछले अंक में सवालीराम ने मनुष्य के वज़न के संबंध में एक सवाल पूछा था। इस सिलसिले में हमें कई खत मिले। उनमें से एक हम इस बार दे रहे हैं --

प्रश्नः मनुष्य जब दूसरे ग्रहों पर जाता है तो वज़न घटता-बढ़ता है। मनुष्य का वास्तव में वज़न कितना होता है और वह किस ग्रह पर होता है।

उत्तरः ग्रहों पर वज़न घटने-बढ़ने की क्रिया जानने से पहले हमें संहति और भार के बारे में जानना ज़रूरी है। यह भी जानना आवश्यक है कि वस्तु में भार क्यों होता है।

किसी वस्तु का भार वह बल है जिसके द्वारा वह पृथ्वी की ओर खिंचती है। जबकि द्रव्यमान या संहति किसी वस्तु में पदार्थ की मात्रा का माप है। यों तो ये परिभाषाएं एक जैसी ही प्रतीत होती हैं किंतु भार एवं द्रव्यमान ज्ञात करने के अलग-अलग तरीकों से आपको अंतर पता चल जाएगा।

भार पता करने के लिए वस्तु को ऊर्ध्वाधर लटकाते हैं एवं उस पर पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण पड़ने वाले बल को नाप लेते हैं। यही वस्तु का भार है।

दूसरी तरफ द्रव्यमान ज्ञात करने के लिए हम किसी तुला का प्रयोग करते

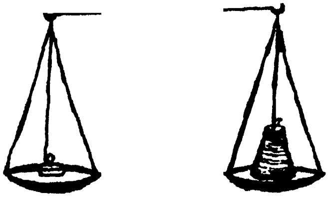

हैं। जिस पर एक तरफ वस्तु एवं दूसरी तरफ वज़न रखकर उससे वस्तु की तुलना करते हैं।*

किसी वस्तु का भार पूरी तरह से गुरुत्वाकर्षण बल पर निर्भर करता है। गुरुत्वाकर्षण बल बढ़ने पर वस्तु का भार बढ़ेगा एवं गुरुत्वाकर्षण बल घटने पर भार घटेगा।

जहां तक सवाल है कि मनुष्य का सही वज़न किस ग्रह पर होगा तो वज़न

या भार तो गुरूत्वाकर्षण बल के कारण होता है। इसलिए जब विभिन्न ग्रहों पर गुरूत्वाकर्षण बल ही अलग-अलग होगा तो भार भी पृथक-पृथक होगा ही जिसे हम कमानी-दार तुला से माप सकते हैं।

जहां तक किसी वस्तु के द्रव्यमान का सवाल है, किसी भी ग्रह पर जाइए उसकी मात्रा पर कोई असर नहीं पड़ेगा। द्रव्यमान ज्ञात करने के लिए हम साधारण तुला (दो पलड़े वाली) का प्रयोग करते हैं जिसमें दोनों ही पलड़ों पर एक जितना गुरुत्व-बल लगने से गुरुत्व-बल का प्रभाव निरस्त हो जाता है। अतः वस्तु का द्रव्यमान चाहे हम कहीं भी, किसी भी ग्रह पर ज्ञात करें उसमें कोई भी अंतर नहीं आएगा।

रामकृपाल सिंह चौहान
सहायक शिक्षक
शास. उ. मा. वि. खहाली, म.प्र.

* किसी भी पदार्थ की संहति या द्रव्यमान (mass, m) पता करने के लिए आमतौर पर एक अन्य तरीका अपनाया जाता है। जिस भी पदार्थ का द्रव्यमान पता करना हो उस पर एक विशेष मात्रा में बल (force, f) लगाया जाता है। उस बल के कारण उस पदार्थ में जो त्वरण (acceleration, a) पैदा होता है उसे नाप लेते हैं। इन दोनो राशियों में से, बल को त्वरण से भाग देने पर उस पदार्थ का द्रव्यमान पता लगाया जा सकता है।

$f = m a$ अर्थात $m = f/a$

बच्चों के कुछ सवाल, आपके लिए

1. ओज़ोन की परत किन गैसों से मिलकर बनी है। यह परत सूर्य से आने वाली ऐसी किरणों को कैसे रोकती है जो हमें नुकसान पहुंचा सकती हैं?

अभिषेक अग्रवाल, हरसूद, ज़िला खंडवा, म.प्र.

2. सूर्य का प्रकाश गर्म क्यों होता है, चंद्रमा की रोशनी जैसा ठंडा क्यों नहीं?

बाबूलाल पाटीदार, ग्राम - बोलासा, ज़िला उज्जैन, म.प्र.

3. सेना में भरती के समय पैर में मेहराब क्यों देखी जाती है?

भगवान दास राठौर, मानागांव, हरदा, ज़िला होशगाबाद, म.प्र.

बच्चों की इन जिज्ञासाओं के जवाब आपके पास भी होंगे। हमें लिख भेजिए। सही जवाबों को हम अगले अंक में प्रकाशित करेंगे।

यतीश कानूनगो

आगे पाठ पीछे सपाट

प्राथमिक शाला के विद्यार्थियों के गणितीय ज्ञान पर एक नज़र।

तिस्पर्धा के इस युग में शिक्षा के बारे में सोचने पर माता-पिता सामान्य तौर पर पाठ्यक्रम को बोझिल बनाने, पुस्तकों को मोटी करने या विषयों की संख्या बढ़ाने के साथ-साथ शिक्षकों को विशेष प्रशिक्षण देने तक आकर रुक जाते हैं। ज़ोर इस बात पर है कि किसी तरह बच्चों को ज़्यादा-से-ज़्यादा सिखा दिया जाए। वैसे हम सब का अनुभव इससे अलग रहा है। इस तरह दबाव बढ़ाने से सीखना कम हुआ है। खासतौर से प्राथमिक शाला के स्तर पर। और इस प्राथमिक शाला के स्तर की पढ़ाई का असर आगे की पूरी पढ़ाई पर पड़ना स्वाभाविक ही है। प्राथमिक शिक्षा का आधार 'थ्री आर' रहा है अर्थात लिखना, पढ़ना और गणित। हमने धीरे-धीरे सामान्य विज्ञान, सामाजिक अध्ययन व अन्य भाषाओं को भी पाठ्यक्रम में डाल दिया। नतीजा यह कि

न खुदा ही मिला न बिसाले सनम,
न इधर के रहे न उधर के रहे।

आज स्थिति ऐसी है कि पांचवीं पास कर लेने के बाद भी अधिकतर बच्चे न तो ठीक से पढ़ पाते हैं, न लिख पाते हैं और गणित तो बस माशाअल्लाह।

हाटपीपल्या (देवास) और पीपलिया मंडी (मंदसौर) के 6वीं कक्षा के

लगभग 150 विद्यार्थियों को (आधे बालक और आधी बालिकाएं लेकर) हमने गणित के कुछ लघु-प्रश्न देकर यह जानने की कोशिश की कि क्या उन्हें गणित की बुनियादी समझ है? परीक्षण हेतु लिए गए छात्र-छात्राएं पांचवीं कक्षा की ज़िला स्तरीय प्राथमिक परीक्षा में पास होकर प्रमाण-पत्र प्राप्त कर चुके थे।

परीक्षण के परिणाम अपने आप में चौंकाने वाले हैं एवं बहुत से प्रश्न खड़े करते हैं। बात केवल दो विशेष स्थानों और चार-पांच स्कूलों की ही नहीं है, हम अनुवर्तन के समय जहां भी बच्चों से चर्चा करते हैं गणित की बुनियादी समझ में यही हाल दिखाई देता है।

परीक्षण में पूछे गए प्रश्न इस प्रकार के थे, (आप स्वयं भी इन्हें बच्चों के साथ आजमा सकते हैं):

पहला प्रश्न था:

अंकों में लिखो–

(अ) एक हज़ार तीन सौ एक

(ब) दो हज़ार पांच

उत्तर-1

(अ) इस खंड के उत्तर में 60 से 70% बच्चों ने इस प्रकार लिखा था 1000, 300, 1 कुछ ने तो 10000 300 1 भी लिखा था।

(ब) अधिकांश उत्तर थे 20005 और 2000005 अथवा 2, 5

उपरोक्त उत्तरों से साफ ज़ाहिर होता है कि बच्चों में स्थानीयमान की अवधारणा नहीं है। वैसे इतनी बड़ी संख्या पढ़ना और स्थानीयमान, दोनों दूसरी और तीसरी कक्षा के पाठ्यक्रम में हैं।

दूसरा प्रश्न था:

0.09 और 0.1 में कौन-सी संख्या बड़ी है।

उत्तर-2

इक्के-दुक्के को छोड़ सभी ने 0.09 को ही बड़ी बताया।

तीसरा प्रश्न था:

0.1 X 0.1 का गुणा करो।

एक हज़ार तीन सौ एक = 1000, 300, 1

दो हज़ार पांच = 20005

उत्तर-3

अधिकांश बच्चों ने इसका उत्तर 0.1 लिखा। या फिर 0.2, .02, 0.11, 1.0, 0.0, 000.1, 11, .21, 100.2, 2, .3 इत्यादि।

एक बालक ने तो गुणा इस प्रकार किया!

```
      0.1
  X   0.1
  ·  0 0 1
   . . . X
 0 0 0 X X
 ---------
 0 0 0 . 1
 ---------
```

चौथा प्रश्नः

1/100 को दशमलव में परिवर्तित करना था।

उत्तर-4

अधिकांश बच्चों ने इसका उत्तर लिखा ही नहीं। जिन्होंने लिखा उन के उत्तर इस प्रकार थे – 1.00, 1.100, 10100

पांचवां प्रश्नः

इस प्रश्न में 503 को 5 से भाग देकर भागफल व शेष लिखना भर था।

उत्तर-5

एक-दो छात्रों ने ठीक किया। अधिकतर बच्चों ने भागफल 10 और शेष 3 बताया, परन्तु फिर भी उत्तरों की विविधता कम नहीं थी!

यदि शिक्षा भवन की नींव ही इतनी कमज़ोर है, तो कलश की भव्यता की सार्थकता क्या है?

ऐसे भाग और शेष

भागफल :	1.6	1.0	125	16	1006	.3/10
शेष :	2	3	3	0	0	0
भागफल :	1	3	16	10	17	108
शेष :	03	15	0	5	2	2
भागफल :	10	1	3145	101	106	10
शेष :	5	3	3082	0	0	0
भागफल :	104	8	2510	1.7	101	-
शेष :	0	3	0	2	0	-
भागफल :	1.6	6	1281	-	-	-
शेष :	0	0	0	-	-	-

एक गड़बड़ लगभग सभी छात्रों ने की, वह थी अंकों को लिखने में। छात्र हिन्दी तथा अंग्रेज़ी अंकों का प्रयोग साथ-साथ करते पाए गये। इसका कारण हो सकता है कि पांचवीं कक्षा तक वे हिन्दी अंकों में लिखते रहे हैं। छठवीं कक्षा में अंग्रेज़ी अंकों का ही प्रयोग होता है। अगर पहली कक्षा से ही अंग्रेज़ी अंकों का प्रयोग कराया जाए तो क्या अनंर्थ हो जाएगा? या फिर पांचवीं के बाद भी हिन्दी अंकों में गणित बना रहे तो कौन-सा पहाड़ टूट पड़ेगा?

स्कूली शिक्षा की इस हालत के लिए कौन ज़िम्मेदार है? बालक, शिक्षक, शिक्षातंत्र या कोई और कारक?

इसी प्रकार यही परीक्षण प्राथमिक एवं माध्यमिक शालाओं के 40 शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के साथ किया गया। यही सवाल पूछे गए उनसे भी। उन में से 50% ने गुणा का सवाल हल कर लिया। परन्तु हैरानी की बात है कि

अगर पहली कक्षा से ही अंग्रेज़ी अंकों का प्रयोग कराया जाए तो क्या अनर्थ हो जाएगा? या फिर पांचवीं के बाद भी हिन्दी अंकों में गणित बना रहे तो कौन-सा पहाड़ टूट पड़ेगा?

सिर्फ 10% ही भाग का प्रश्न ठीक-ठाक कर पाए। यह परिणाम तो हमें और गहराई से सोचने के लिए बाध्य करते हैं। यदि हमारे प्राथमिक शाला शिक्षकों के गणित का आधार इतना कमज़ोर है तो शिक्षक-प्रशिक्षण में शिक्षण-विधियों के साथ-साथ विषय-वस्तु पर भी अधिक ध्यान देना होगा। प्राथमिक शाला शिक्षक का गणित का ज्ञान कम है, अतः प्राथमिक शाला के छात्र भी कमज़ोर रह जाते हैं। जब ये छात्र हायर सेकण्डरी पास करके शिक्षक बन जाते हैं तो इनका गणित का आधार कमज़ोर रह जाता है। इस प्रकार यह कुचक्र चलता रहता है। अब यह समझने की आवश्यकता है कि कुचक्र को किस स्तर पर तोड़ा जाये, क्या शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं से या प्राथमिक शाला के शिक्षण से या किसी अन्य स्तर से, या फिर सभी स्तर पर एक साथ? इन सब प्रश्नों का उत्तर किन से पूछें? क्या शिक्षा विभाग, शिक्षा के सतही सुधार से हटकर गहराई से सोचेगा?

यदि हमारे प्राथमिक शाला शिक्षकों के गणित का आधार इतना कमज़ोर है तो शिक्षक-प्रशिक्षण में शिक्षण-विधियों के साथ-साथ विषय-वस्तु पर भी अधिक ध्यान देना होगा।

यदि शिक्षा भवन की नींव ही इतनी कमज़ोर है, तो कलश की भव्यता की सार्थकता क्या है?

(यतीश कानूनगो - शिक्षक के रूप में एक लंबे अनुभव के बाद अब ज़िला शिक्षा प्रशिक्षण संस्था (डाईट), देवास में कार्यरत।)

∨ ⊂ ⅃ ⊕ ⌡ ≈ ∈ ∩ = ∫ ⇔ · × °

∞ ⇔ ≠ ⊆ ∅ ∝ ± *f* √— | ∉ ⊃ ⊗ ≥ ϒ ⊄ ∇ ⇑

घनश्याम की नज़र से . . .

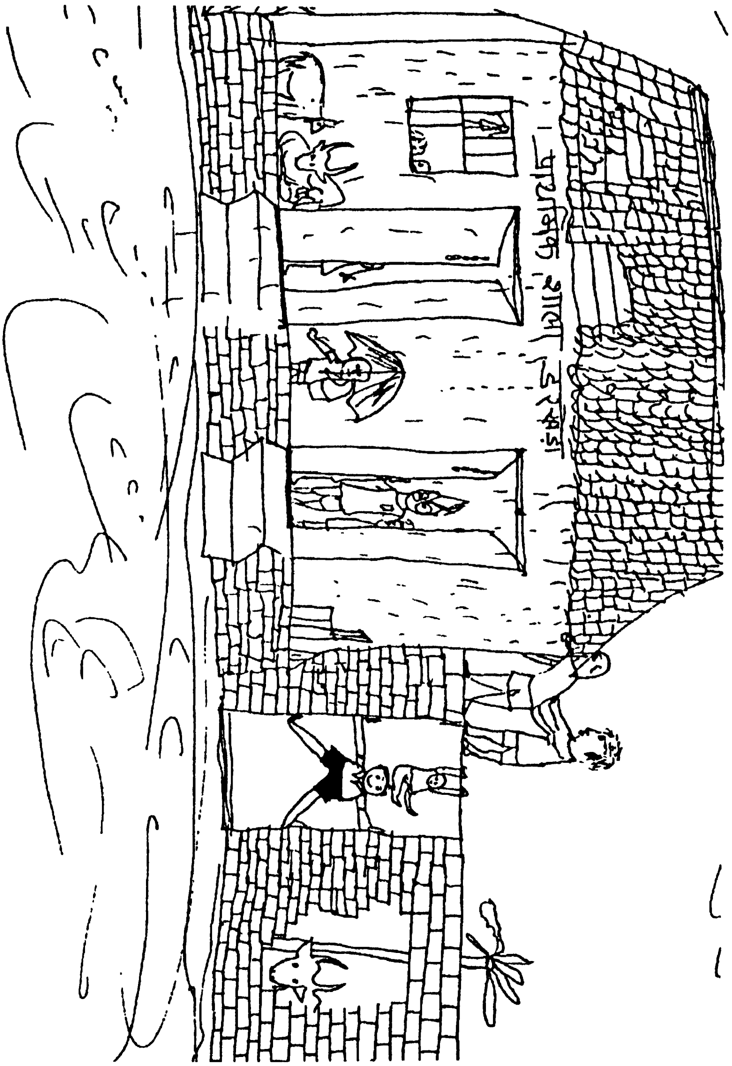

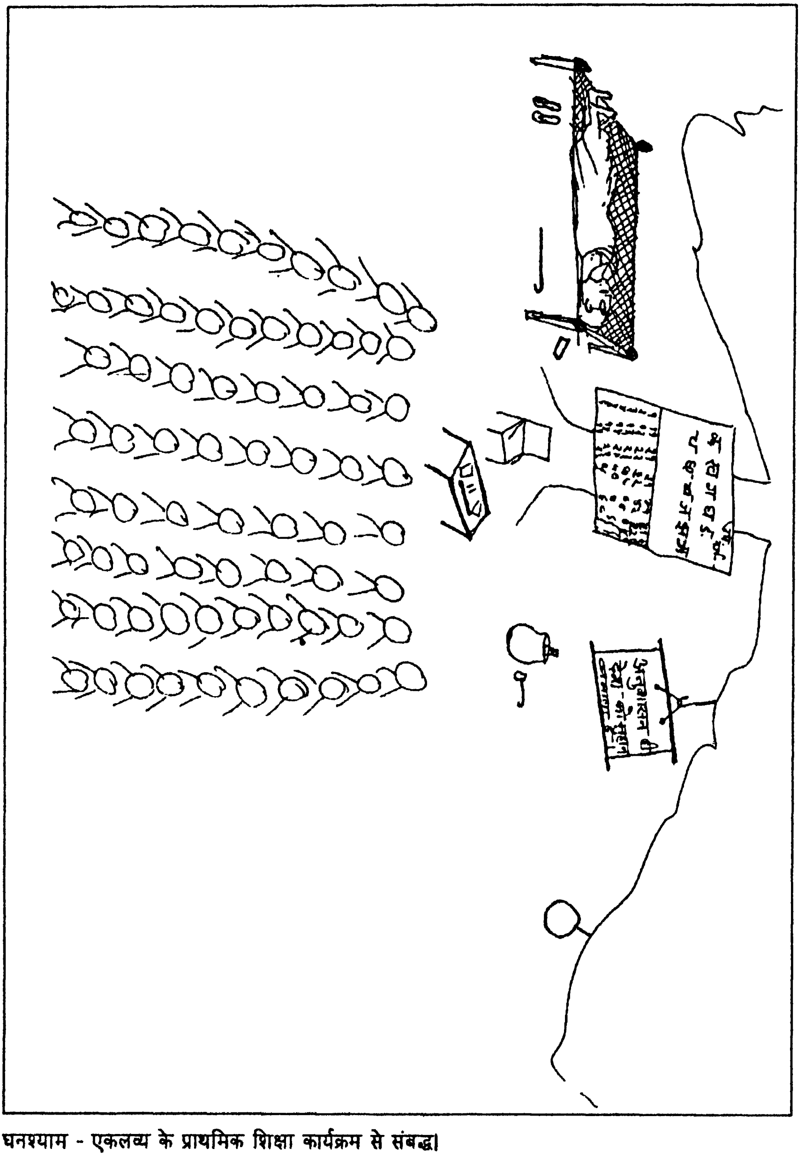

घनश्याम - एकलव्य के प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम से संबद्ध।

बच्चे की भाषा और अध्यापक

कृष्ण कुमार

हमारे स्कूलों में 'बात करना' प्रायः गलत समझा जाता है। यह माना जाता है कि यदि कोई बात कर रहा है तो ठीक से पढ़ाई नहीं कर रहा होगा। इसलिए जैसे ही अध्यापक बच्चों को बात करता हुआ देखता है, वह तुरंत उन्हें रोकता है। बात करने की छूट बच्चों को सिर्फ आधी छुट्टी में रहती है जब अध्यापक कोई महत्वपूर्ण काम नहीं कर रहा होता है।

बातचीत के प्रति उपेक्षा की वजह से हम शिक्षा में बातचीत के उपयोगों की अवहेलना करते आ रहे हैं। यह स्थिति सभी स्तरों पर है, पर प्रारम्भिक स्तर पर यह सबसे स्पष्ट है। नर्सरी व प्राइमरी स्कूल के बच्चों के लिए बातचीत करना, सीखने और सीखी हुई चीज़ को सुदृढ़ बनाने का एक बुनियादी माध्यम है। सच तो यह है कि ऐसे अध्यापक, जो बच्चों को बात नहीं

करने देते, किताबों व अन्य सामग्री के लिए पैसे की कमी की शिकायत करने के हकदार नहीं हैं। वे पहले ही एक ऐसा मूल्यवान साधन बेकार जाने दे रहे हैं जिसके लिए कोई पैसा नहीं खर्च करना पड़ता। इसलिए ऐसा स्कूल जहां छोटे बच्चे बात करने को स्वतंत्र नहीं, बड़ा फिजूलखर्च स्कूल कहलाएगा।

यह सही है कि बच्चे तरह-तरह के उद्देश्य लेकर बातचीत करते हैं और ये सभी उद्देश्य अध्यापक के लिए उपयोगी नहीं कहे जा सकते। उदाहरण

के लिए बोरियत के मारे बात करने और दूसरे की निगाह से चूकी हुई चीज़ उसे दिखाने के लिए बात करने में फर्क है। दूसरी किस्म की बात बच्चे की सीखने की प्रक्रिया को बल देती है, जैसा कि दो बच्चों के इस संवाद में हो रहा है। ये बच्चे अध्यापिका की मेज़ के पास इंतज़ार में खड़े फुसफुसा रहे हैं और अध्यापिका रजिस्टर भरने में लगी है:

पहला बच्चा : देखा, आज बहनजी अंगूठी पहने हैं!

दूसरा बच्चा : तुमने पहले नहीं देखी?

पहला बच्चा : नहीं .... हां, हां, मैंने पहले देखी है।

दूसरा बच्चा : अरे लेकिन यह अंगूठी दूसरी है।

पहला बच्चा : बहनजी ने नई अंगूठी खरीदी है। यह पहले वाली से छोटी है।

दूसरा बच्चा : नहीं, पतली है।

यदि आप इस छोटे-से संवाद का विश्लेषण करें तो सीखने की उन सम्भावनाओं को पहचान सकेंगे जो बातचीत के ज़रिए ही इन दो बच्चों को उपलब्ध हुई। यदि पहले बच्चे ने अध्यापिका की अंगूठी देख कर बात न छेड़ी होती तो उसे यह याद करने का मौका न मिलता कि बहनजी पहले भी अंगूठी पहनती थीं। यदि यह बातचीत न हुई होती तो दूसरे बच्चे को पुरानी और नयी अंगूठी में फर्क देखने का अवसर न मिलता, न ही यह समझने का अवसर मिलता कि 'छोटी' और 'पतली' में क्या भिन्नता है।

बातचीत के इन उपयोगों के प्रति सचेत होने के लिए ज़रूरी है कि हम बच्चों की बात सुनने की आदत डालें। यह कहना आसान है, पर इसे करना मुश्किल है क्योंकि बड़े यह मानकर चलते हैं कि उनका काम बच्चों को निर्देश देना है और बच्चों का काम सुनना है। अच्छे श्रोता से मेरा आशय एक ऐसे व्यक्ति से है जो बात के सूक्ष्म उद्देश्य और बातचीत के कारण पैदा हुई सीखने की सम्भावनाओं को धैर्यपूर्वक पहचान सके।

किसी भी आम स्थिति में बातचीत में मस्त बच्चे ये दस क्रियाएं करते नज़र आ सकते हैं:

1. जिस चीज़ पर अभी तक ध्यान नहीं दिया, उस पर ध्यान देना,

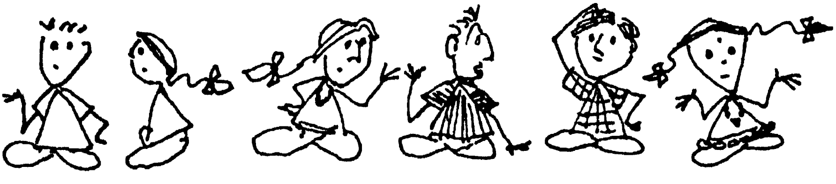

2. किसी भी चीज़ को मोटे तौर पर या बारीकी से देखना,
3. अपने-अपने निरीक्षणों का आदान-प्रदान करना,
4. निरीक्षणों को तरतीब से लगाना,
5. दूसरे के निरीक्षण को चुनौती देना,
6. निरीक्षण के आधार पर तर्क करना,
7. भविष्यवाणी करना,
8. पिछले किसी अनुभव को याद करना,
9. दूसरे की भावनाओं या उसके अनुभवों की कल्पना करना,
10. किसी काल्पनिक स्थिति में स्वयं की भावनाओं की कल्पना करना।

अगर आप बच्चों की बातचीत को ध्यानपूर्वक सुनने की आदत डाल लें तो आप जल्दी ही इन दस और कई अन्य सम्भावनाओं में फर्क करने में समर्थ हो जाएंगे।

अध्यापक को बच्चों में यह विश्वास पैदा करना होगा कि वे बात करने के लिए स्वतंत्र हैं।

हर बच्चा यह महसूस करे कि जब वह कुछ कहेगा तो उसे सुना जाएगा और सभी बच्चे यह महसूस करें कि अध्यापक को उनका बोलना अच्छा लगता है।

कक्षा में बच्चों को बातचीत के लिए प्रोत्साहित करने के अवसरों को हम पांच कोटियों में रख सकते हैं :

1. अपने बारे में बात करने के अवसर देना

सब बच्चे अपनी ज़िन्दगी के बारे में - उन घटनाओं के बारे में जो हो चुकी हैं और उनके बारे में भी जो अभी नहीं हुई हैं - बात करने को उत्सुक रहते हैं बशर्ते कि उन्हें इसके लिए प्रोत्साहन और मौका दिया जाए। कई अध्यापक बच्चों की व्यक्तिगत ज़िन्दगी और स्कूल में उनकी पढ़ाई के बीच कोई सम्बन्ध नहीं देख पाते। वे इस बात पर ज़ोर देते हैं कि कक्षा में सिर्फ पाठ्यपुस्तकों में दी गई सामग्री पर ही चर्चा हो। अध्यापक की इस मान्यता के कारण कई बच्चे कक्षा में किसी भी किस्म की हिस्सेदारी नहीं निभा पाते। अध्यापक जिन चीज़ों पर चर्चा करते हैं, वे बच्चों को आकर्षित नहीं कर पातीं, और बच्चों के व्यक्तिगत अनुभव (जैसे किसी रिश्तेदार का आना, आंधी और बारिश में घर की हालत, या बीमार पड़ना) अध्यापक को रास नहीं आते।

2. स्कूली अनुभवों पर बात करने के अवसर देना

स्कूल का परिवेश खोजबीन और निरीक्षण का एक शानदार माध्यम है। स्कूल कहीं भी हो, उसके इर्द-गिर्द ऐसी कई छोटी-छोटी चीज़ें होती हैं जिनसे विस्तृत जांच और बहस की सामग्री मिलती है। दुकानें, पेड़, पत्थर, मकान, सड़क, बाड़, मिट्टी, फाटक, घोंसले, छत्ते, फूल, तितलियां, खुली नाली, नल और तमाम चीज़ें स्कूल के पड़ोस में ढूंढी जा सकती हैं और बारीक अवलोकन, अवलोकनों के आदान-प्रदान, सच के निर्धारण और दूसरी चीज़ों से उसके सम्बन्ध की खोज के लिए काम में लाई जा सकती हैं।

3. तस्वीरों पर चर्चा करना

ऐसी बातचीत जो सर्जना और विश्लेषण को प्रोत्साहित करती हो, तस्वीरों के ज़रिए अच्छी तरह की जा सकती है। तस्वीरें कैसी भी हो सकती हैं - अखबारों और पत्रिकाओं के विज्ञापनों या खबरों के साथ छपे चित्र, कैलेंडरों, टिकटों, लेबलों और पोस्टरों पर छपे चित्र। ये सभी काम में लाए जा सकते हैं। इस प्रकार, तस्वीरों के स्रोत बहुत व्यापक हैं और किसी छोटे गांव में ढूंढे जा सकते हैं। अध्यापक साल-दर-साल इस्तेमाल के लिए तस्वीरों का एक संग्रह बना सकता है।

बच्चों के बीच बैठ कर बगैर किसी तैयारी के, बिल्कुल अनौपचारिक ढंग से किसी तस्वीर के बारे में बातचीत करना भी उपयोगी सिद्ध हो सकता है। लेकिन यदि हम देखने के विभिन्न पहलुओं के बारे में सचेत हो जाएं तो बच्चों की भाषा के विकास की दृष्टि से हम ऐसी बातचीत को और भी अधिक उपयोगी बना सकते हैं। अध्यापक का हर प्रश्न बच्चों की प्रतिक्रिया को एक निश्चित ढंग से प्रभावित करता है। सवालों के ज़रिए बच्चों की निगाह और प्रक्रिया को विस्तार देने की क्षमता हम किस प्रकार हासिल कर सकते हैं? प्रक्रिया के स्तर, जिनकी तरफ बच्चों का ध्यान हम प्रश्नों की मदद से मोड़ सकते है, ये रहे:

अ. ढूंढना : इस स्तर पर हम बच्चों से केवल इतना कहेंगे कि वे चित्र में

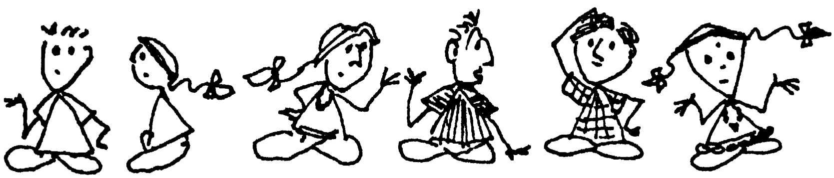

खोजियों की खबर

पांच या छह बच्चों की टोली को स्कूल की इमारत के आसपास या भीतर किसी निश्चित चीज़ या जगह का अध्ययन करने के लिए भेजिए। जैसे वे पेड़ों के एक झुंड, चाय की गुमटी, टूटे हुए पुल या घोंसले का मुआयना करने जा सकते हैं। उनसे कहिए कि वे सावधानी से उस चीज़ की खोजबीन करें और अपने निरीक्षणों की आपस में चर्चा करें।

जिस समय खोजी-दल बाहर गया हो, बाकी बच्चों को उस चीज़ के बारे में विस्तार से बताएं। जैसे यदि खोजी-दल चाय की गुमटी का अध्ययन करने गया है तो बच्चों को बताएं कि वहां क्या-क्या चीज़ें उपलब्ध हैं (बच्चों से भी पूछें), उसे कौन चलाता है, वहां उपलब्ध चीज़ें कहां-कहां से आती हैं आदि।

वापस आने पर खोजी-दल कक्षा के सवालों का सामना करे। प्रश्न पूछने में अध्यापक की बारी भी आनी चाहिए।

अगली बार किन्हीं और बच्चों का खोजी दल बनाइए।

दिखाई गई चीज़ों को ढूंढें। हम इस तरह के प्रश्न पूछ सकते हैं: 'इस चित्र में क्या है?' 'क्या इसमें एक चूहा है?'

ब. तर्क करना : प्रतिक्रिया के इस स्तर का सम्बन्ध कारण बताने की क्षमता से है। चित्र में दिखाई गई किसी बात का जो भी कारण बच्चा बताए, अध्यापक को उसे स्वीकार करना चाहिए। अध्यापक स्वयं भी कारण बता सकता है - पर केवल एक सम्भव उत्तर के तौर पर, अंतिम उत्तर के तौर पर नहीं। प्रश्नों के उदाहरण : 'नन्हीं लड़की क्यों रो रही है?' 'मोटर-साइकिल का पिछला हिस्सा हमें दिखाई क्यों दे रहा?' 'चूहा क्यों छिपा है?'

स. आरोपण : इस स्तर पर हम बच्चे से खुद को चित्र में आरोपित करने को कहते हैं। अतः इस स्तर पर प्रश्न पूछने का उद्देश्य बच्चे को एक कल्पित स्थिति में स्वयं को डालने, कौन क्या कहेगा यह कल्पना करने, और उन्हें कैसा लगेगा यह सोचने को प्रोत्साहित करना है। प्रश्नों के उदाहरण: 'यदि तुम इस पेड़

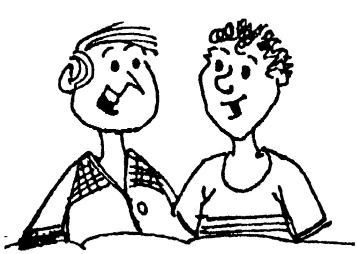

पर बैठे होते तो तुम्हें कसा-क्या दिखाई देता?' 'छोटी लड़की साइकिल पर बैठे आदमी से क्या कह रही है?' 'चूहा क्या सोच रहा है?'

द. भविष्यवाणी : इस स्तर का सम्बन्ध चित्र में दिखाई गई स्थिति के बाद की घटनाओं का अनुमान करने से है। बच्चों को यह सोचने के लिए प्रेरित करना है कि अब आगे क्या होगा। प्रश्नों के उदाहरण: 'यह आदमी अब कहां जाएगा?' 'नन्हीं लड़की घर पर क्या करेगी?' 'वह घर कैसे पहुंचेगी?'

ड. सम्बन्ध बैठाना : अब हम ऐसे प्रश्न पूछेंगे जो बच्चों को चित्र में दिखाई गई स्थिति से मिलती-जुलती कोई चीज़ अपनी ज़िन्दगी में ढूंढने को प्रेरित करें। प्रश्नों के उदाहरण: 'तुम कभी मोटर-साइकिल पर बैठे हो?' 'बैठकर कैसा लगता है?' 'क्या तुम क भी किसी अजनबी के साथ रहे हो?' 'उस दिन फिर क्या हुआ?'

4. कहानियां सुन चर्चा करना

कोई कहानी सुनते वक्त हमारा ध्यान उसमें चित्रित घटनाओं और चरित्रों की तरफ भागता है। कई कहानियों का सम्बन्ध हमारी देखी हुई घटनाओं से नहीं होता, पर हम उनकी कल्पना कर लेते हैं। इसी तरह भले ही हमने कहानी के चरित्रों जैसे लोग कभी न देखे हों, फिर भी हम उनकी तस्वीर मन में बना लेते हैं।

कहानी सुनते समय हम घटनाक्रम और चरित्रों के व्यवहार की कल्पना करते चलते हैं। दूसरी तरफ जब हम स्वयं कोई कहानी सुनाते हैं तो उसमें शामिल अनुभवों को व्यवस्थित करते चलते हैं। कहानी चाहे असली हो या काल्पनिक, उसमें दो चीज़ें अवश्य रहती हैं: पहला, जीवन की घटनाओं, चरित्रों आदि का पुनर्योजन, और दूसरा, सुनने वाले का ध्यानाकर्षण। ये दोनों बातें भाषा के कुशल इस्तेमाल पर निर्भर हैं। दरअसल हर एक कहानी हमसे भाषा की चतुरता की मांग करती है और कहानियां सुनने का अनुभव हमें भाषा के चतुर कौशल के नमूने देता है।

5. अभिनय करना

कहानी और नाटक में सम्बन्ध है, इसलिए अध्यापक आसानी से एक को दूसरे से जोड़ सकता है। कहानी को

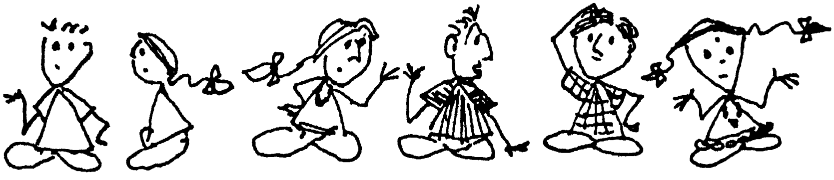

बूझो, मैंने क्या देखा

एक बच्चा बाहर जाए, दरवाजे पर या कक्षा से कुछ दूर खड़े होकर आसपास दिखाई दे रही चीज़ों में से कोई एक चुन ले। वह चीज़ कुछ भी हो सकती है - पेड़, पत्ता, गिलहरी, चिड़िया, तार, खम्भा, पत्थर। लौटकर वह उस चीज़ के बारे में सिर्फ एक वाक्य बोले, जैसे, मैंने एक भूरी चीज़ देखी।

अब इस बच्चे से एक प्रश्न पूछकर उस चीज़ का अनुमान लगाने का मौका कक्षा के हर बच्चे को मिलेगा। उदाहरण के लिए–

पहला बच्चा – 'क्या वह पतली है?'
उत्तर – 'नहीं'.
दूसरा बच्चा – 'वह कितनी बड़ी है?'
उत्तर – 'वह काफी बड़ी है।'
तीसरा बच्चा – 'क्या वह कुर्सी जितनी बड़ी है?'
उत्तर – 'नहीं, वह कुर्सी से छोटी है।'
चौथा बच्चा – 'क्या वह मुड़ सकती है?'

अंत में सही अनुमान लग चुकने के बाद कुछ बच्चों को अपने प्रश्नों के उत्तरों से आपत्ति हो सकती है। उदाहरण के लिए किसी को यह आपत्ति हो सकती है कि रंग भूरा नहीं, मिट्टी जैसा था। ऐसी स्थिति में बारीक अंतर देख पाने में अध्यापक को बच्चों की मदद करनी होगी।

. . . सुन रहा बच्चा उसमें चित्रित भूमिकाओं को चुपचाप ग्रहण कर रहा होता है। यही चीज़ नाटक में होती है, पर अधिक मुखर रूप में। नाटक में बच्चों को विभिन्न भूमिकाओं को बातचीत, हाव-भाव और शरीर के ज़रिए प्रस्तुत करने के बहुत से मौके मिलते हैं।

नाटक बच्चों के लिए कोई विशेष या निराली चीज़ नहीं है - वह तो उनकी ज़िन्दगी का भाग है। नकल उतारना, किसी चीज़ को बढ़ा-चढ़ा कर बताना, स्वांग करना जैसी नाटकीय

युक्तियों का प्रयोग बच्चे करते ही रहते हैं। ऐसा बच्चा मुश्किल से मिलेगा जिसमें नाटकीय कौशल न हो। पर अनेक बच्चे अपने नाटकीय कौशल का कक्षा में प्रयोग करने को उत्सुक नहीं होते। ऐसा माहौल जिसमें नाटक सम्भव और सही लगे, कक्षा में अध्यापक की पहल से ही बन सकता है। पर माहौल बनाने की कोई एक तकनीक नहीं है। आप इसके लिए धीरे-धीरे प्रयास कर सकते हैं।

अध्यापक की प्रतिक्रिया

स्कूल में दाखिल होने तक बच्चे अपनी मातृभाषा की बुनियादी संरचनाओं पर अच्छा-खासा अधिकार पा चुके होते हैं। उन्हें न केवल तमाम तरह के कार्यों के लिए भाषा का प्रयोग करना होता है, बल्कि वे यह भी खूब समझ चुके होते हैं कि भिन्न-भिन्न सन्दर्भों और श्रोताओं के हिसाब से भाषा को समन्वित करना कितना ज़रूरी है। पांच वर्ष का बच्चा सन्देशों को कार्य में बदलना (जैसे, कहने पर पानी का गिलास लाना और उसे वापस सही जगह रखना) जानता है। वह लोगों की बातचीत की सहायता से उनके चरित्र और आपसी रिश्तों का अनुमान भी कर लेता है। छोटे बच्चे को ये क्षमताएं किसी के सिखाने से नहीं, रोज़ाना के जीवन से प्राप्त होती हैं। बच्चे के आसपास जो कुछ हो रहा होता है, वह उसे अपनी सोच-विचार की छलनी से छानकर अपने भाषा-संयंत्र का हिस्सा बना लेता है।

हमें ये क्षमताएं स्वयं हासिल करने का श्रेय बच्चे को देना चाहिए। हम बच्चे को कोई बिल्कुल नई चीज़ नहीं दे सकते। केवल ऐसी परिस्थितियां बना सकते हैं जिनमें बच्चा अपनी मौजूदा क्षमताओं का और विकास कर सके। बातचीत के सन्दर्भ में ऐसी परिस्थितियां रचने की मुख्य शर्त है बच्चे की बात पर अपनी प्रतिक्रिया के प्रति सचेत होना। हर बार बच्चे की बात सुनते समय हमें चाहिए कि :

1. उसे पूरी बात कहने दें,
2. वह जो कह रहा है उसमें रुचि लें,
3. मतभेद व्यक्त करने की इच्छा हो तो उस पर काबू करें,
4. बच्चे ने जो कहा है उस पर अपनी

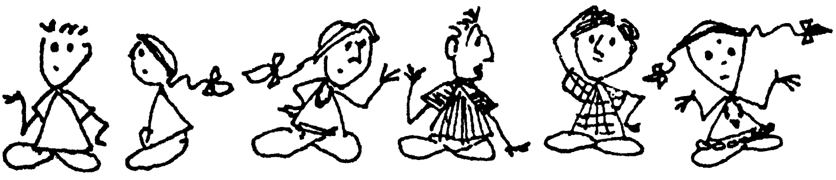

तुम कहां रहते हो?

बच्चे दो पंक्तियों में आमने-सामने बैठते हैं। एक पंक्ति 'बताने वालों' की है, दूसरी 'सुनने वालों' की। पहली पंक्ति में बैठे हर बच्चे को अपने सामने बैठे बच्चे को समझाना है कि वह अपने घर कैसे जाता है। रास्ते को अच्छी तरह समझने के लिए सुनने वाला कितने ही सवाल पूछ सकता है। उदाहरण :

बताने वाला: 'सीधे जाकर मुड़ जाओ।'
सुनने वाला: 'कितनी दूर तक सीधे जाना है?'
बताने वाला : 'कूड़े के ढेर तक। वहां से मुड़ना है।'
सुनने वाला : 'दाहिने मुड़ना है कि बाएं?'
बताने वाला : 'दाहिने....नहीं, नहीं बाएं।'

जब सभी बताने वालों की बारी आ चुके तब सुनने वाले बताने वाले बन जाएं। और खेल फिर शुरू।

प्रतिक्रिया विस्तार से यानी, अधिक शब्दों में और ज़्यादा समृद्ध वाक्य-रचना का इस्तेमाल करते हुए दें।

5. घटना की और जानकारी मांगें या बच्चे का ध्यान विषय के किसी नए पहलू की तरफ खींचें।

बच्चों से इस तरह बात करने के लिए काफी अभ्यास ज़रूरी है। सबसे ज़रूरी यह महसूस करना है कि बातचीत बच्चे के लिए सीखने का एक महत्वपूर्ण साधन है और उसका बच्चे के सामाजिक व्यवहार और व्यक्तित्व पर गहरा असर पड़ता है।

(कृष्ण कुमार - शिक्षाविद, दिल्ली विश्वविद्यालय में कार्यरत। उनकी लिखी किताबों में - राज समाज और शिक्षा - काफी महत्वपूर्ण और चर्चित)

- बच्चे की भाषा और अध्यापक - एक निर्देशिका
- कृष्ण कुमार

वर्ष - 1986, पृष्ठ संख्या - 49
प्रकाशक -संयुक्त राष्ट्र बाल कोष,
73, लोदी स्टेट,
नई दिल्ली-110003

वच्चों से बातचीत : एक अनुभव

स्कूली अनुभवों और इर्द-गिर्द की छोटी-छोटी चीज़ों पर विस्तृत बातचीत की संभावना से वो समय याद आया जब हम सब बच्चों के साथ बाहर खेल रहे थे और अचानक काँव-काँव का शोर सुनकर जो ऊपर देखा तो कौवों का झुंड हमारे ऊपर मंडरा रहा था। खेल रुक गया और बातचीत शुरू हो गई, कौओं के बारे में ....

मैंने पूछा, "अरे, इतने सारे कौवे यहाँ कैसे आ गए?"
एक बच्चा बोला, "किसी को ढूंढ रहे हैं, दीदी।"
दीदी, "किसको ढूंढ रहे हैं?"
– "वच्चा खो गया, उसे उसके माँ-बाप, भाई-बहन खोज रहे हैं।"
दीदी, "क्यों, बच्चा कहाँ चला गया होगा?"
– "उड़ना सीख रहा होगा, रास्ता भूल गया होगा।"
दीदी, "तो अब कैसे मिलेगा?"
– "सूंघकर ढूंढ लेंगे।"
– "इनकी आवाज़ सुनकर वह आ जाएगा।"
– "नहीं दीदी, वह घर से भाग गया है।"
दीदी, "अच्छा, तो बाकी कौवों को कैसा लग रहा होगा?"
– "उसकी माँ रोएगी।" (और एक बच्चे ने रोने का नाटक शुरू कर दिया। फिर इस नाटक पर सब हँसने लगे)
तभी सारे कौवे एकाएक बिखरकर उड़ गए।
एक बच्चे ने पूछा, "वो कहाँ चले गए?"
दूसरे वच्चे ने जवाब दिया, "उन्होंने देख लिया कि बच्चा यहां नहीं है।"

इस बातचीत के बाद मैं सोचने लगी यह बच्चे कितने संवेदनशील हैं। इनको पक्षियों का एक समूह भी एक परिवार नज़र आता है। कौए के बच्चे को खोजने सभी निकले हैं लेकिन बच्चे माँ की भावनाओं से ज़्यादा परिचित हैं, तभी तो कह रहे थे कि - उसकी माँ रो रही होगी। बच्चे यह समझते हैं कि जैसा उनके साथ होता है वैसा दूसरे प्राणियों के साथ भी होता होगा। साथ ही वे आदमी और पक्षियों के बीच के अंतर को भी समझते हैं, तभी तो उन्होंने कहा कि - कौवे बच्चे को सूंघकर खोज लेंगे। अपने जीवन के सामान्य अनुभवों को प्राणि-जगत से जोड़कर देखना और कल्पना करना कि प्राणियों के जीवन में भी ऐसा होता होगा। कौवों के इस झुंड ने पाँच मिनटों के लिए उन बच्चों के जीवन में एक खिड़की खोल दी थी। मेरा सौभाग्य था कि उस समय वहां थी और उनके अंदर झांक पाई।

वेणु एंडले
एकलव्य, होशंगाबाद

क्यों नहीं हो सकते सारे स्कूल तोत्तोचान के स्कूल जैसे?

● प्रकाश कान्त

पुस्तक - तोत्तोचान
लेखक - तेत्सुको कुरोयांगी
अनुवाद - पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा
प्रकाशक - साहित्य चयन, गांव झिरी
डाक - बांसखेड़ी, वाया - मनोहर थाना
ज़िला - झालावाड़, राजस्थान - 326 037
प्रकाशन - 1993, पृष्ठ - 167, मूल्य - 30 रु.

"युद्ध जब बच्चों की ज़िन्दगी में दाखिल होते हैं तब न सिर्फ उनके भौतिक साधनों को बल्कि सपनों के संसार को भी नष्ट कर देते हैं।" 'तोत्तोचान - खिड़की में खड़ी एक लड़की' को पढ़कर, बिल्कुल आखिर तक पहुंचकर एक नतीज़ा यह निकाला जा सकता है। लेकिन, यह किताब के पूरेपन को एक तरह से कम करना होगा। एक छोटी-सी बच्ची के अनुभव संसार को प्रस्तुत करने वाली यह किताब कई चीज़ों को हमारे सामने रखती है। मसलन, बहुत छोटे बच्चों के स्कूल कैसे हों, पालक अपने बच्चों के साथ किस तरह व्यवहार करें, बच्चों के लिए किस तरह का संसार रचा जाए, वगैरह।

दरअसल इस किताब को पढ़ते-पढ़ते हम इस सच्चाई से रूबरू होते हैं कि घर से लेकर स्कूल तक बच्चों को नकली और असुविधाजनक बंदोबस्त का शिकार होना पड़ता है। और कि बड़े कभी जान नहीं पाते कि बच्चों के भीतर किस तरह के सपने, ख्वाहिशें उफान ले रही होती हैं। बच्चों की इन तमाम चीज़ों को बड़े, अपनी उदासीनता, लापरवाही, नासमझी और रूखेपन के चलते बुरी तरह कुचल देते हैं। और इस कुचलन का उन्हें कभी अहसास तक नहीं हो पाता।

वास्तव में, बड़े हमेशा यही उम्मीद करते होते हैं कि जितनी जल्दी हो सके बच्चे बड़े होकर उनकी दुनिया में शामिल हो जाएं। हम सब बड़ों की पहली और सबसे महत्वपूर्ण कोशिश यही होती है कि जल्दी-से-जल्दी बच्चों से उनका बचपन छीनकर उनपर संपूर्ण बड़ापन लाद दिया जाए। इसलिए, बड़ों की दुनिया में बच्चों की दुनिया के लिए कोई जगह नहीं होती।

हमारे घर-स्कूल, बच्चों से उनका बचपन छीनने की लगातार कोशिश में लगे रहते हैं। लेकिन, इसके बावजूद अपवाद स्वरूप ही सही, कुछ लोग तो होते ही हैं जो ऐसी जगह बनाने की कोशिश में लगे रहते हैं जहां बच्चों को अपने समूचे बचपन के साथ जी पाने का मौका मिल सके। जापान की राजधानी तोक्यो में तोमोये एक ऐसा ही स्कूल है। यह स्कूल पुराने रेल के डिब्बों में लगता है। इसी स्कूल में दाखिल होती है सात साल की एक नन्हीं बच्ची तोत्तोचान। जो अपनी अजीब बताई जाने वाली आदतों की वजह से एक दूसरे स्कूल से निकाली जा चुकी है।

जिस-जिस बच्चे के माता-पिता इस बात को लेकर चिंतित हैं कि उनके स्वतंत्र, स्वाभाविक ऊर्जा से भरे बच्चे को स्कूल में दाखिला कैसे मिल सकेगा, उनकी इस समस्या का हल तोमोये स्कूल करता है। वैसे रेल के डिब्बों वाले स्कूल को खुद तोत्तोचान अपने लिए पसंद करती है। वह स्कूल में रेल के डिब्बों में लगने वाली कक्षाओं के अलावा और भी कई खासियतें पाती है। वह देखती है कि उस स्कूल का अपना कोई गीत नहीं है जिसे सबको रोज़ गाना ही है। वहां किसी भी बच्चे को कुछ भी करने से रोका-टोका नहीं जाता। वहां के प्रधानाध्यापक उसकी बातें लगातार चार-चार घंटों तक सुनते रह सकते हैं।

वहां का काम पीरियड से बंधा हुआ नहीं है। बच्चे अपना काम अपनी इच्छा और सुविधा के अनुसार करते रह सकते हैं।

यहां शिक्षक खुद व्याख्यान या भाषण देने की अपेक्षा बच्चों को अधिक-से-अधिक अवसर उपलब्ध करवाते हैं। बच्चों को सैर के लिए ले जाया जाता है। उनकी गलतियों की शिकायत उनके माता-पिता से नहीं की जाती। कुल मिलाकर वहां का वातावरण कुछ इस प्रकार का होता है जिसमें सीखी जाने वाली बातें बच्चे के भीतर अपने-आप उभरती हैं। वहां के बच्चे अपने प्रधानाध्यापक की पीठ पर चढ़ जाते हैं, गोद और कन्धे पर लद जाते हैं। आवश्यकता पड़ने पर वे प्रधानाध्यापक से उधार भी मांग लेते हैं। उनकी असफलता का वहां मज़ाक नहीं उड़ाया जाता। डांटा नहीं जाता। यकीनन, ऐसे स्कूल ही वह जगह हो सकती है जहां बच्चे खुद जाना पसंद करें। भले ही पालक इस तरह के स्कूल का अविश्वास करते हों पर तोत्तोचान इसी स्कूल को अपने लिए उपयुक्त पाती है। उसके माता-पिता भी आश्वस्त हो जाते हैं।

इस स्कूल के प्रधानाध्यापक कोबायासी एक कल्पनाशील और रचनात्मक अभिरुचि रखने वाले व्यक्ति हैं। तोमोये उनकी कल्पनाशीलता और रचनात्मकता का ही निर्माण है। तोत्तोचान न सिर्फ इस स्कूल में दाखिला लेती है बल्कि बड़ी होकर वहीं पढ़ाने का सपना भी देखती है। लेकिन इसी दरम्यान दूसरे विश्वयुद्ध की लपटें जापान को घेरने लगती हैं। जापान में तेज़ी से महंगाई बढ़ती है। बाज़ार से खाने-पीने का सामान गायब होने लगता है। युद्ध बच्चों के सपनों के संसार में दाखिल हो जाता है। और एक दिन उनका स्कूल युद्ध का शिकार होकर जल उठता है। सब कुछ तबाह होता जाता है। बच्चे भारी मन से अपनी-अपनी राह चल देते हैं। प्रधान अध्यापक कोबायासी के

भीतर जलते स्कूल को देखकर एक ही सवाल घुमड़ता है कि तोमोये जैसा ही दूसरा स्कूल वे कब और कहां बना पाएंगे।

तोत्तोचान की कहानी लिखी है तेत्सुको कुरोयांगी ने। जिस दौर में जापान में शिक्षा की बदहाली अपनी चरम पर थी, उसी दौर में इस पुस्तक का आना जापानी पालकों के लिए एक बिल्कुल नई और चौंकाने वाली दुनिया से दो-चार होने जैसा था। इसीलिए इस किताब की लाखों प्रतियां हाथों-हाथ बिक गईं।

बेशक, हमारे स्कूलों में बच्चे अपने पूरे बचपने के साथ मौजूद नहीं हैं। ऐसे में तोमोये जैसे स्कूल चुनौती भरे मॉडल बनकर सामने आते हैं। इस स्कूल की तुलना में जब हम अपने सरकारी, गैर-सरकारी, महंगे और खैराती स्कूलों पर नज़र डालते हैं तो सिर्फ अफसोस नहीं होता बल्कि एक ज़बरदस्त सदमा भी पहुंचता है। हमारे इन शिक्षा संस्थानों में हर रोज़ करोड़ों तोत्तोचान जिब्ह हुई जा रही हैं और इस बात की परवाह करने वाला कोई नहीं है।

देने की चुनौती कोई तो स्वीकार करेगा।

इस किताब का अनुवाद पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा ने किया है। जो कि उनके द्वारा किए गए जॉन होल्ट की किताब "बच्चे असफल कैसे होते हैं" के अनुवाद की तरह ही सहज है। किताब को पढ़कर ऐसा नहीं लगता कि हम एक अनुवाद पढ़ रहे हैं।

आज जब सारा शैक्षिक संसार चरमरा गया हो और एक आम बच्चे के लिए शिक्षा एक तमाशा

यह किताब उन लोगों को, जो बच्चों की स्वाभाविकता के बारे में सोचते हैं, अपने आसपास के शैक्षिक पर्यावरण को देखने के बाद उदास और हताश भी कर सकती है और कोबायासी जैसी थोड़ी-सी बेचैनी और तड़पन भी शुरू कर सकती है। अगर ऐसा हो तो इस ज़मीन पर तोमोये जैसे स्कूल खड़े कर

और यातना शिविर में बदलती जा रही हो तब ऐसी किताबें ही शिक्षा के क्षेत्र में नया और सार्थक प्रयास करने की हिम्मत बांधती हैं और दिशा दिखाती हैं।

(प्रकाश कांत - माध्यमिक शाला, मानकुंड (देवास) में शिक्षक, हिंदी साहित्य में शोध एवं विभिन्न विषयों पर नियमित लेखन।)

** तोत्तोचान का हिंदी अनुवाद पहली बार मध्य-प्रदेश शिक्षा विभाग द्वारा प्रकाशित पत्रिका पलाश के जून-जुलाई 1989 के अंक में प्रकाशित हुआ था। साहित्य चयन द्वारा प्रकाशित पुस्तक में प्रकाशक द्वारा दी गई भूमिका पलाश के इस अंक के संपादकीय में से ली गई है। - सं.*

** इस लेख में दिए गए चित्र मूल पुस्तक में चिहिरो इवासाकी के चित्रों की हूबहू प्रतिकृतियां हैं।*

●●●

कुछ बातें - बीते ज़माने की

●रोहित धनकर

गणित ही एक ऐसा विषय था जिससे गांव के लोग अपने को कुछ जोड़ पाते थे। साथ ही घर का माहौल भी गणित के प्रति समझ बनाने में मददगार साबित हुआ। गणित अच्छा क्यों लगता है, एक आम अनुभव।

मुझे गणित क्यों अच्छा लगता है? यह एक व्यक्तिगत सवाल है जो किसी भी आम आदमी से पूछा जा सकता है। लेकिन किसी भी आम आदमी की व्यक्तिगत रुचियों या रुझानों में अन्य लोगों की रुचि क्यों होगी? वे क्यों जानना चाहेंगे? जब हम इस प्रकार की बात पूछते हैं तो शायद कहीं हमारे मन में आशा होती है कि उनके उत्तर के आधार पर हम कुछ सामान्य नतीजे निकाल सकेंगे, जिनसे यह पता चल सके कि जिन लोगों को गणित अच्छा लगता है, उनमें क्या कोई ऐसी बातें हैं जो सबके साथ एक जैसी होती हैं?

यदि मेरी यह पूर्वमान्यता सही है तो इस सवाल का जवाब ईमानदारी और गंभीरता से देने का प्रयत्न करना चाहिए। पर पहले मैं यह स्पष्ट कर दूं कि ये सवाल किसी गणितज्ञ से या इस प्रकार के किसी व्यक्ति से नहीं हैं। एक सामान्य व्यक्ति जिसकी गणित में रुचि है, गणित का विद्यार्थी है, हम और आप कह सकते हैं गणित से प्रेम करता है, ऐसे व्यक्ति से ये सवाल हैं। मुझे ऐसा लगता है कि मुझे दो क्षेत्रों को काफी ध्यान से देखना पड़ेगा, इस सवाल का उत्तर ढूंढने के लिए।

पहला क्षेत्र मेरे व्यक्तिगत अतीत का क्षेत्र है तो दूसरा मेरी मानसिक बनावट का और उस मानसिक बनावट से गणित के स्वरूप के सामंजस्य का क्षेत्र है। ये दोनों क्षेत्र एक दूसरे से अछूते नहीं हैं। निश्चित रूप से व्यक्तिगत अतीत का मानसिक बनावट

पर बहुत गहरा असर होता है और सब लोगों की तरह मुझ पर भी हुआ होगा। उन दोनों क्षेत्रों के बारे में कुछ कहने की कोशिश करूंगा।

●

पहले व्यक्तिगत अतीत के क्षेत्र को लेते हैं। मैं जिस गांव में पला बढ़ा हूं, उसमें जो लोग उस वक्त रहते थे उनके मन में गणित का एक खास स्थान था। ये मैं इसीलिए कह रहा हूं क्योंकि हम स्कूली बच्चों से जो बड़े लोग थे और जो स्कूल भी कभी नहीं गए थे, वे हमसे पहेलियां पूछा करते थे। उन पहेलियों में से जो मुझे याद हैं वो अधिकतर गणित से संबंधित हुआ करती थीं। एक उदाहरण दें तो कुछ इस प्रकार की बात हम लोगों से पूछी जाती थी, उस समय- 'सौ मन का लक्कड़, उस पर बैठा मक्कड़, रत्ती-रत्ती खाए तो बताओ कितने दिन में खाएगा?' अब पूछने वाला तो यह सवाल पूछ के चुप हो जाता था। लेकिन हमारे मन में कई सारी चीज़ें उठने लगती थीं कि सौ मन का लक्कड़ है और उसके ऊपर मक्कड़ बैठा है जो एक दिन में एक ही रत्ती खाता है तो उस रत्ती का और मन का क्या संबंध है? और फिर हम बहुत सारे लोगों से पूछते रहते थे कि ये रत्ती और मन का क्या संबंध है? ये सारी पूछ-ताछ करने के बाद जितना जोड़-बाकी-गुणा-भाग हम लोगों को आता था, उससे उसको हल करने की कोशिश करते थे। लेकिन जो व्यक्ति पूछता था उसको तरीका आए-न-आए उत्तर तो पहले से पता होता ही था। इधर हम लोग हल ढूंढने के लिए एक लंबी प्रक्रिया से गुज़रते और उसके बाद वो हमें तुरंत एक नतीजा सुना देता था कि सही है या गलत है। हमें लगता था कि यह तो बहुत पारंगत व्यक्ति है। यह तो एक उदाहरण है। ऐसी बहुत सारी पहेलियां हम लोगों से पूछी जाती थीं।

इस बात का एक कारण शायद यह भी हो सकता है कि स्कूली पढ़ाई में जो कुछ भी होता था, उसमें से शायद गणित ही एक ऐसी चीज़ थी जिसे गांव वाले समझ सकते थे और जिसके साथ कुछ जुड़ाव महसूस कर सकते थे। इसके अलावा जो भी अन्य बातें हमें प्राइमरी में अन्य विषयों के रूप में पढ़ाई जाती थीं वो तो ऐसी भाषा में और ढंग से लिखी हुई होती थीं कि गांव वाले अपने साथ उनका कोई रिश्ता देख ही नहीं पाते थे। गणित की जो मूल क्षमताएं हैं उनसे वे ज़रूर अपना रिश्ता देखते थे। हो सकता है मेरी यह बात सही न हो, यह एक ख्याल मात्र है। जब मैं कुछ और बड़ा

पैसे देने वाला मूल, ब्याज आदि की गणना पहले से करके रखता था लेकिन इसके बावजूद वो थोड़ा-सा यह देखना चाहता था कि जिसने हिसाब लिखा है वो भी उस ढंग से करता है क्या? इससे हमारे ऊपर गांव वालों के सामने यह सिद्ध करने की बात रहती थी कि हम हिसाब ठीक से कर पाएं।

हुआ तो मैने एक चीज़ और महसूस की कि गांव में जब लोग कोई सौदा खरीदते थे या कोई ब्याज वगैरह का हिसाब लगवाते थे तो बही में पैसे लिखवाते थे। उस समय किसी स्कूली बच्चे को पकड़कर उससे इस प्रकार के हिसाब करवाया करते थे।

हम लोग अपने हिसाब के कागज़, पेंसिल और अपने तरीकों से वो हिसाब करते थे। साथ में वो लोग अपने तरीकों से भी उसी हिसाब को करते रहते थे। बहुत बार ऐसा हुआ कि कोई व्यक्ति किसी दूसरे को पैसा उधार दे रहा है और मुझे बुलाया गया कि भाई तुम ज़रा यह लिख दो, कि इस-इस तरह से दिया जिसमें ब्याज, दर वगैरह सब कुछ लिखवाते थे।

अब देखिए कुछ महीने बाद वो व्यक्ति पैसे लौटा रहा है तो सामान्यतः मुझे ही वापस बुलाया जाता था। पैसे देने वाला मूल, ब्याज आदि की गणना पहले से करके रखता था लेकिन इसके बावजूद वो थोड़ा-सा यह देखना चाहता था कि जिसने हिसाब लिखा है वो भी उस ढ़ंग से करता है क्या? इससे हमारे ऊपर भी गांव वालों के सामने यह सिद्ध करने की बात रहती थी कि हम हिसाब ठीक से कर पाएं। ये स्थिति बड़ी अजीब- सी होती थी जिसमें एक तरह का मानसिक दबाव तो था लेकिन स्कूली तरह का डर नहीं होता था। उसके साथ कहीं एक गहरा संतोष इस बात से मिलता था कि हमारे बुजुर्ग हमारी किसी खास क्षमता को सराहते या मानते हैं कि इस बच्चे में यह क्षमता तो आ गई है।

तो मैं यह कह सकता हूं कि मुझे गणित अच्छे लगने के पीछे एक कारण तो यह है कि जिस समुदाय में मैं पला बढ़ा उसमें गणित को विशेष दर्जा मिला हुआ था।

●

दूसरा बड़ा कारण था मेरे पिताजी का गणित के प्रति रुझान। मुझे जहां तक याद है वे दो-तीन चीज़ों पर बहुत बल देते थे - गणित उनमें से एक था।

वे किसी व्यक्ति की प्रतिभा को उसकी गणितीय क्षमताओं और गणित की समझ के आधार पर ही नापते थे। यह शायद मुझे तब समझ नहीं आता था लेकिन जब मैं पीछे मुड़कर देखता हूं तो पाता हूं कि वे जब भी कभी तीव्र बुद्धि व्यक्ति का उदाहरण देते थे तो वे प्रायः गणितज्ञों के उदाहरण हुआ करते थे। गणित को अच्छी तरह से समझना और गणित में खूब अच्छी तरह से काम कर पाना उनके लिए बुद्धिमत्ता का प्रमाण था। जब मैं गणित में अच्छा करता था या लोगों की दी हुई समस्याओं का हल करता तो देखता था कि वे बहुत संतुष्टि महसूस कर रहे हैं। ये दूसरी बात है जो गणित के प्रति मेरा रुझान बढ़ाने में मददगार साबित हुई।

●

तीसरी बात जो मुझे महत्वपूर्ण लगती है, वो एक विशेष घटना है या यों कहें कि तीन-चार मिली-जुली घटनाएं हैं। एक तो जब मैं तीसरी कक्षा में पढ़ता था तब की बात है। हमारा स्कूल लगभग बंद था। नाममात्र को ही चल रहा था। मेरे पास तीसरी कक्षा की सभी पुस्तकें तो नहीं थीं - सिर्फ गणित की ही किताब थी। मैं उसी को पढ़ता रहता था। हमारे गाँव के और भी बड़े बच्चे स्कूलों में जाते थे – छठवीं, सातवीं, आठवीं में पढ़ने वाले। उनमें से एक मेरे चाचा भी थे। मैं उनसे सवाल पूछता रहता और खुद करता था। इससे भी शायद रुझान बना। घटनाओं के क्रम में एक और चीज़ है जिसका मुझे लगता है कि काफी बड़ा हाथ है गणित के प्रति मेरी समझ बनाने में।

मैं छठवीं या सातवीं में था तब हमारे एक शिक्षक थे। बच्चे उन्हें बहुत पसंद करते थे लेकिन स्कूल का संचालक शायद उन्हें बहुत पसंद नहीं करता था। स्कूल पूरी तरह से ऐसे लोगों के हाथ में था जो शिक्षा के बारे में तो कुछ भी नहीं जानते। बस सेठों से पैसे लाने में सक्षम थे और राजनीति किया करते थे।

उन्होंने अपने एक व्यक्ति को प्राइमरी से मिडिल में लाने के लिए हमारे शिक्षक को हटाकर प्राइमरी में लगा दिया। जो शिक्षक हटाए गए थे

पिताजी जब किसी तीव्र बुद्धि व्यक्ति का उदाहरण देते तो वे प्रायः गणितज्ञों के उदाहण हुआ करते। गणित को अच्छी तरह से समझना और उसमें खूब अच्छी तरह से काम कर पाना उनके लिए बुद्धिमत्ता का प्रमाण था।

वे हमें गणित और विज्ञान पढ़ाते थे और ये जो नए सज्जन प्राइमरी से आए थे वे भी गणित और विज्ञान पढ़ाने लगे। एक सप्ताह में ही हमें पता चल गया कि इन्हें ठीक से गणित नहीं आती - वो भी छठी-सातवीं की गणित जिसमें कुछ खास तो होता नहीं था लेकिन वे उसमें उलझ जाते थे।

उनकी इस कमज़ोरी से हमें मौका मिला। मैं लगातार उनसे आगे चलने की कोशिश करता था - दूसरे लोगों की मदद से। हमारे गांव के कुछ नवीं, दसवीं में पढ़ने वाले विद्यार्थियों से मैं पहले ही प्रश्नावली समझ लेता और जानबूझकर कक्षा में नए शिक्षक को उलझाने की कोशिश करता। इसके पीछे हमारा मंतव्य यही था कि वे शिक्षक जिनको हम पसंद करते थे, उन्हें वापस गणित पढ़ाने के लिए लगा दिया जाए।

इसमें हम लोगों को सफलता मिली हालांकि जद्दोजहद काफी लंबी चली। लेकिन एक चीज़ यह हुई कि उसके बाद मैं गणित में हमेशा पूरी कक्षा से आगे रहता। मुझे इस बात का कुछ खास फर्क नहीं पड़ता था कि शिक्षक ने वो प्रश्नावलियां या वो अध्याय पढ़ाए हैं या नहीं। मै स्वयं उनको पढ़ने की कोशिश करता था। फिर धीरे-धीरे मुझे ऐसा लगने लगा कि दिमाग पर खूब ज़ोर लगाओ तो गणित वाली चीज़ें आ ही जाती हैं।

इसी दौरान मैंने एक बहुत बचकाना प्रयत्न भी किया। उसी साल की बात है जब मैंने गणित पर खूब ध्यान दिया तो कहीं मेरे दिमाग में एक चीज़ आई कि गणित में कुछ नहीं है, सिर्फ संख्याएं हैं और संख्याओं के बारे में भी उस वक्त मेरा मानना था कि वास्तव में संख्याएं एक से सौ तक ही होती हैं। बाद में तो उन्हीं का पुनरावर्तन होता रहता है और उसके आधार पर नई संख्याएं बन जाती हैं। उस वक्त मैंने एक छोटी-सी किताब लिखने की कोशिश भी की। जिसमें कहने की कोशिश की कि गणित में कुछ नहीं होता - सिर्फ एक से सौ तक की संख्याएं होती हैं, संख्याओं के लिए चिन्ह होते हैं, जोड़-बाकी गुणा-भाग होते हैं और इन्हीं चीज़ों को पलट-पलट कर तरह-तरह के काम में लिया जाता है।

मेरे सामने पहली समस्या इस स्वरूप को संपूर्ण साबित करने के संदर्भ में थी - बीजगणित की, क्योंकि उन दिनों बीजगणित कम ही पढ़ते थे। लेकिन उसका हल तो बड़ा आसान है और मैंने निकाल लिया। फिर बीच में मुझे ये चीज़ इसलिए छोड़नी पड़ी

क्योंकि मैं रेखागणित को इसमें समाहित नहीं कर पाया। लेकिन बहुत दिन तक मेरे दिमाग में ये बात रही कि क्या कोई ऐसा तरीका हो सकता है जिसके आधार पर हम गणित की कुछ मूल चीज़ें पकड़ लें और उसके आधार पर कहें कि बाकी चीज़ यही है और उसमें से निकाल सकता हूं। जब अब मैं मुड़ के उस बात को याद करता हूं तो बड़ी अजीब बात लगती है। क्योंकि ये ही कुछ बहुत बड़े गणितज्ञों की चिंताएं भी रहीं हैं। जिन पन्नों पर मैंने वो अध-कचरी बाते लिखीं काफी साल तक मेरे पास थे।

जब भी कोई नई चीज़ मेरे सामने आती है तो मैं हमेशा यह कोशिश करता हूं कि उसकी मूल बातों को पकड़ कर यह समझ लूं कि वह किन सिद्धांतों पर आगे बढ़ती है। यह कोशिश तो मैं हर चीज़ में करता रहा हूं, लेकिन नतीजा यह रहा है कि मैं बहुत खराब विद्यार्थी था। जो विषय मेरी पकड़ में आ जाते थे उनमें तो मैं बहुत अच्छा करता था। पर बहुत सारे विषय जो पकड़ में नहीं आए, उन सबमें मैं हमेशा फिसड्डी किस्म का रहा। जैसे इतिहास में मुझे बहुत दिनों के बाद इस तरह के संबंध समझ में आने शुरू हुए। जब तक वे समझ में नहीं आए तब तक मैं उसे बिल्कुल नहीं पढ़ता था, न ही उसमें रुचि लेता था।

तीसरी घटना लगभग उस वक्त का है जब मैं कॉलेज के दूसरे साल में पढ़ता था। उन दिनों मैं कुछ गहरे व्यक्तिगत तनावों से गुज़र रहा था। मुझे अच्छी तरह याद है एक दिन गणित की कुछ समस्याएं हल कर रहा था जो बिल्कुल समझ में नहीं आ रही थीं। अचानक लगा कि मैं ये समस्याएं इसलिए हल नहीं कर पा रहा हूं क्योंकि मैं सारी-की-सारी समस्या को एक साथ देख रहा हूं। जबकि इसमें बहुत सारी छोटी-छोटी समस्याएं हैं और यदि उनको अलग-अलग करके बारी-बारी हल करूं और फिर एक साथ बिठाऊं तो शायद यह हल हो जाएगी। मैंने ऐसी कोशिश भी की और काफी हद तक सफल भी हुआ। रात में जब ये चीज़ें

अचानक लगा कि मैं ये समस्याएं इसलिए हल नहीं कर पा रहा हूं क्योंकि मैं सारी-की-सारी समस्या को एक साथ देख रहा हूं। जबकि इसमें बहुत सारी छोटी-छोटी समस्याएं हैं और यदि उनको अलग-अलग करके बारी-बारी हल करूं और फिर एक साथ बिठाऊं तो शायद यह हल हो जाएगी।

हल कर रहा था तो अचानक ऐसा लगा कि मेरी जो व्यक्तिगत समस्याएं हैं वे भी इतनी जटिल, बोझिल और तनावपूर्ण इसलिए लग रही हैं क्योंकि मैं बहुत सारी चीज़ों को एक साथ मिलाकर देख रहा हूं। अगर उनके छोटे-छोटे टुकड़े करूं तो शायद अधिक सफलता मिलेगी और मैंने वैसा ही करने की कोशिश भी की। यह ज़रूरी नहीं है कि सब लोगों के साथ ऐसा ही हो लेकिन मुझे इससे बहुत बल मिला, मैं कुछ नतीज़ों पर पहुंच पाया।

मुझे हमेशा लगता रहा है कि एक खास प्रकार का चिंतन है - चीजों को छोटे-छोटे टुकड़ों में तोड़कर उनके बारे में सोचना, उनके सारे पहलुओं को देखकर फिर से उन्हें आपस में जोड़ना - ये प्रक्रिया मैंने गणित से सीखी है और इससे मुझे अपनी व्यक्तिगत समस्याओं को हल करने में बहुत मदद मिलती रही है। इसके कारण गणित के प्रति एक प्रकार का आभार महसूस करने लगा हूं।

●

ये सब व्यक्तिगत कारण हैं, या फिर ऐसा कह सकते हैं कि अतीत से संबंधित कारण हैं। मुझे लगता है कि हमें दूसरी तरफ भी देखने की ज़रूरत है। बहुत सारी बातें ऐसी हैं जो मानसिक बनावट और गणित के स्वरूप से संबंधित हैं। वे सब तो इसमें आ गई हैं लेकिन कुछ ऐसी हैं जिनको काफी हद तक शुद्ध बौद्धिक कहा जा सकता है। हम सब जानते हैं कि अधिकतर, गणित विभिन्न प्रकार की चीज़ों में आपसी संबंध ढूंढने का काम करता है। या दी गई परिस्थिति में कुछ इस प्रकार की चीज़ें खोजने की कोशिश करता है जिनके आधार पर पूर्वानुमान संभव बनते हैं। और जहां भी पूर्वानुमान होता है वहां व्यक्ति एक प्रकार की सुरक्षा महसूस करता है। हमें पता रहता है कि आगे क्या होने वाला है, भविष्य से हम बिल्कुल अनजान नहीं रहते। यह बात मुझे आकर्षित करती है। इस प्रकार के संबंध ढूंढने में गणित को अवधारणात्मक परिकल्पनाएं और संरचनाएं विकसित करनी पड़ती हैं। ये संरचनाएं अपने आसपास के परिवेश के बारे में हमारे पूर्वानुमान का सामर्थ्य बढ़ाती हैं। साथ ही चिंतन की शक्ति का एक अनुभव देती हैं।

एक खास प्रकार का चिंतन है - चीज़ों को छोटे-छोटे टुकड़ों में तोड़कर उनके बारे में सोचना, उनके सारे पहलुओं को देखकर फिर से उन्हें आपस में जोड़ना - ये प्रक्रिया मैंने गणित से सीखी है।

ऐसा नहीं है कि ये बातें सिर्फ गणित में होती हैं, सारे मानवीय ज्ञान में शायद यही होता है और इसे करने की कोशिश में हम लोग सदैव लगे रहते हैं। लेकिन गणित इसका एक बहुत ही सशक्त उदाहरण है।

एक और बात है - गणित का शुद्ध बौद्धिक आनंद। पता नहीं ये चीज़ कितने लोग महसूस करते होंगे लेकिन बहुत-सी बातें ऐसी होती हैं जिनके ऊपर कम-से-कम मैं तो काफी समय लगा सकता हूं और लगाता रहता हूं। मुझे याद है कि जब मैं हायर-सेकेण्डरी में था तो मुझे किसी ने ताश के पत्तों का एक जादू बताया था। जिसमें 51 पत्तों को लेकर किसी अन्य व्यक्ति से कहना होता है कि वो किसी एक पत्ते के बारे में सोच ले। फिर आप उन सब पत्तों को तीन ढेरियों में बांटते जाते हैं और उस व्यक्ति से पूछते हैं कि उसका सोचा हुआ पत्ता कौन-सी ढेरी में है। उसके बाद उन तीनों ढेरियों को इकट्ठा कर लेते हैं, इस बात का ध्यान रखते हुए कि जिस ढेरी की तरफ उसने इशारा किया है उसे बीच में रखना है। दोबारा फिर तीन ढेरियां बनाते हैं और पूछते हैं कि उसका पत्ता कौन-सी ढेरी में है। इस बार भी उसकी बताई हुई ढेरी को बीच में रखते हैं। ऐसा ही तीसरी बार भी करने पर सोचा हुआ पत्ता उन 51 पत्तों के ठीक बीच में आ जाता है। जब ये जादू मुझे सिखाया गया तो मैंने बहुत सोचा कि मामला क्या है, ये पत्ता बीच में कैसे आ जाता है। मुझे अब भी याद है कि मैंने कोई एक दस्ता कागज़ यही पता करने के लिए भर दिए थे। ये सही है कि कोई भी गणित का शिक्षक ये बात शायद 10-15 मिनट में ही समझा सकता था। लेकिन मैंने जितने प्रयत्न किए, जितनी तरह की समीकरणें बनाईं और उनके हल निकाले, उस सब में मुझे बड़ा आनंद आया।

इस प्रकार की चीज़ें मेरे साथ बहुत बार होती रहती हैं। ये कहना मुश्किल है कि क्योंकि मुझे गणित अच्छी लगती है इसलिए ऐसा होता है, या फिर ऐसी बातें होती रहती हैं इसलिए गणित अच्छी लगने लगी - सवाल काफी टेढ़ा है क्योंकि यहां तक आते-आते दोनों ही बातें एक-दूसरे में एकदम घुलमिल-सी जाती हैं।

(रोहित धनकर - राजस्थान में प्राथमिक शिक्षा और स्वास्थ्य को लेकर बच्चों के बीच काम कर रही संस्था दिगान्तर, टोड़ी रमजानपुरा, जयपुर से संबद्ध)

ची ता

चीता देखा है? कहीं भी दो-चार लोगों के बीच जरा यह सवाल छेड़कर देखिए। किस-किसने नहीं देखा होगा और कहां-कहां नहीं दिखाई दे जाएगा - चिड़ियाघरों से लेकर आस-पास के अभयारण्यों में ....। और अगर बात छिड़ गई कि कैसा दिखता है चीता तो फिर कमाल देखिए - शेर, बाघ, चीता, तेंदुआ, लायन, टाईगर ...... सब आपस में ऐसे घुलमिल जाएंगे कि बस पूछिए मत। धारियों वाला क्या कहलाता है, काले धब्बे किसके बदन पर होते हैं, लम्बे बाल वाला, और वो बिल्ली जैसा ..... सचमुच में बाल नोच लेने जैसी हालत बन जाती है।

इतना सब हो जाने के बाद अगर कोई आपको बताए कि हिन्दुस्तान के जंगलों में से इस सदी के पांचवें दशक में चीता बिल्कुल ही खत्म हो गया और कि शायद आखिरी बार सन् 1948 में ज़िन्दा चीतों का फोटो खींचा गया जब कोरवाई रियासत के महाराजा ने जीप की रोशनी से चुंधिया गए तीन चीतों का शिकार किया था। यकीन नहीं होता न? परन्तु सच्चाई यही है। हिन्दुस्तान ही नहीं शायद एशिया महाद्वीप से ही चीता बिल्कुल खत्म हो गया है। 'शायद' इसलिए क्योंकि इरान के आसपास के इलाकों में चीता दिखने की खबरें तो मिलती रही हैं परन्तु किसी को भी पक्के तौर पर नहीं मालूम। कुछ अफ्रीकी देशों में ही गिने-चुने चीते बचे हैं अब।

पर हो सकता है कि इतना पढ़ने के बाद भी आप कहें कि 'तो क्या हुआ, चिड़ियाघर में देखा था वो तो चीता ही था, वहां क्यों नहीं हो सकता?'

तो अब सुनिए दूसरी हैरतअंगेज़ बात - हिन्दुस्तान के किसी भी चिड़ियाघर में चीता है ही नहीं! इंग्लैंड में लंदन के चिड़ियाघर में और कुछ और देशों में दो-चार जगह शायद अभी भी बचा है। इसलिए यह सम्भावना कि आपने चिड़ियाघर में देखा होगा भी कम ही है, है न?!

अब आपको लग रहा होगा, तो आखिरकार यह चीता है क्या बला? तीन खास पहचान हैं उसकी – शरीर पर छोटे-छोटे भरे हुए काले धब्बे, आंख की कोर से होंठों के कोनों तक खिंची काली पट्टी और पंजे में बाहर की ओर निकले नाखून। अगर चीते की पहचान हो गई तो अब पता करने की कोशिश कीजिए कि शेर, बाघ, तेंदुआ, ... ये सब कैसे दिखते हैं!

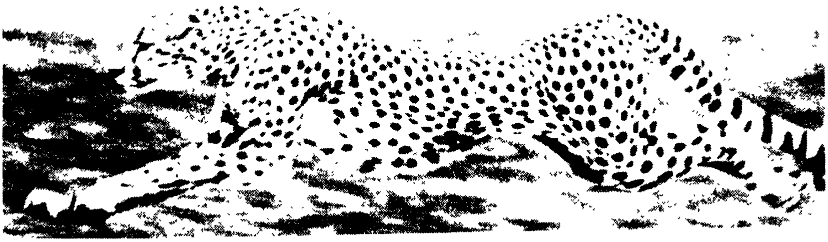

12766

प्रकाशन: एकलव्य, कोठी बाज़ार, होशंगाबाद - 461 001
मुद्रण: आदर्श प्रिंटर्स, महाराणा प्रताप नगर, भोपाल - 462 011